मामोनी रायसम गोस्वामी
की
कहानियां

अंतर्भारतीय पुस्तकमाला

मामोनी रायसम गोस्वामी की कहानियां

अनुवाद

श्रवण कुमार

नेशनल बुक ट्रस्ट, इंडिया

आवरण : जहांगीर चवाराला की पेंटिंग पर आधारित।

ISBN 81-237-3458-1

पहला संस्करण : 2001 *(शक 1922)*

Original Title : Mamoni Raisom Goswameer Swanirwachit Galpa *(Asamiya)*
Translation : Mamoni Raisam Goswami Kee Kahaniyan *(Hindi)*

रु. 30.00

निदेशक, नेशनल बुक ट्रस्ट, इंडिया
ए-5 ग्रीन पार्क, नई दिल्ली-110016 द्वारा प्रकाशित

अनुक्रम

भूमिका

मामोनी रायसम गोस्वामी की प्रतिभा उनके उपन्यासों में प्रमुख रूप से उभरकर सामने आई है। सीमित फलक के कारण कहानियों में यह प्रतिभा कभी-कभी दब-सी जाती है। पर उनकी कुछ कहानियां इसके बावजूद अविस्मरणीय बन गई हैं और वे कहानियां जो उस ऊंचाई तक नहीं पहुंच पाईं, उनमें भी जीवन का उत्ताप और प्रकाश है। अधिकांश कहानियों का आधार पीड़ा और वेदना है और साथ ही जीवन को झकझोर देने वाली मर्मांतकता भी। लेकिन लेखिका की जीवन के प्रति घोर आस्था है और सृजनशीलता की अपार क्षमता में विश्वास भी। ये कहानियां जीवन की विध्वंसात्मक शक्तियों पर बार-बार कुठाराघात करती हैं। 'वंशबेल' शीर्षक कहानी में पीतांबर महाजन केवल देह से अपनी भूख मिटाना नहीं चाहता, उसकी आकांक्षा वंशबेल को अक्षुण्ण रखते हुए और स्थूल आवश्यकताओं को परे धकेलते हुए जीवन-प्रवाह से जुड़ना है। अपनी यह आकांक्षा वह अपने पैसे के बल पर पूरी करना चाहता है। पर यह पैसा एक प्रकार का माध्यम ही है। उसकी इच्छा किसी तरह पूरी नहीं हो पाती, बल्कि अपना शरीर बेचने वाली एक विधवा ब्राह्मण स्त्री ने भी उसमें सेंध लगा दी है, क्योंकि वह अपने से निचली जाति के किसी पुरुष से गर्भ धारण करने को तैयार नहीं है। दूसरे शब्दों में, हमारी दूषित सामाजिक व्यवस्था ने व्यक्ति की स्वाभाविक जैव प्रवृत्ति को भी विकृत कर दिया है। 'एक अविस्मरणीय यात्रा' में पैसे के लालच में एक आतंकवादी पुत्र अपने पिता को भी नहीं बख्शता और उसके तमाम जातिगत संस्कारों को, जो उसके लिए पवित्रता लिए हुए हैं, ठोकर मार देता है। 'मोहभंग' में युवा-प्रेम का विशुद्ध आत्मसमर्पण और निर्मल मादकता तो खत्म ही है, वास्तविक विगत का कठोर हिसाब-किताब भी खत्म है। 'पशु' में पूंजीवादी पाश्विकता के तहत निष्पाप और निर्लोभ तरुण प्रेम की निर्मलता का अंत हुआ दिखता है, लेकिन ऐसे हृदय-विदारक आविष्कार ने पाठक के मन की गहराई में अकस्मात प्रकाश भर दिया है। वह दिग्भ्रमित नहीं होता।

मामोनी रायसम के लिए कहानी-लेखन उत्पीड़न के विरुद्ध एक संग्राम है, आम आदमी के दुख-निवारण का एक अनोखा जरिया है। उनकी कहानियों में तेज धार वाला व्यंग्य झलकता है। किंतु यह व्यंग्य हास्य नहीं उपजाता। लेखिका जिस

दुनिया को जानती है, वह बहुत निष्ठुर और ममताविहीन है, यद्यपि इस सब के बीच वह मानवीय सहृदयता भी ढूंढ लेती है। और यही कारण है कि उसकी कहानी 'परसू का कुआं' में रक्त-पिपासु काबुलीवाला रहमत भी अंत में मानवीय रूप में अवतरित होता है। 'हिम साम्राज्ञी' एक पत्थर के शहर में बर्फीली नदी की भांति दिखती है। 'पशु' की बुनियाद में कृष्णकांत और निमाई का निष्पाप प्रेम है। 'द्वारका' में द्वारका के मर्मरहित हृदय में भी प्रेम का एक पारिजात खिल उठता है। इस सब के बावजूद लेखिका की कहानियां हिंसा के साए से घिरी दिख पड़ती हैं। यहां के सभी व्यक्तियों में, चाहे वह पीतांबर की बीमार पत्नी हो, चाहे आर्थिक तंगी से जूझती पीतांबर की अंकशायिनी बनने वाली दमयंती हो, या 'पशु' का पैसे के लिए हाथी को मारने वाला महावत हो, हिंसा का भाव दिखाई देता है। ये व्यक्ति स्वयं अधिकांशतः निम्न वर्ग के दुखी प्राणी हैं।

हत्या, दुर्घटना, शारीरिक या मानसिक कष्ट संसार के लिए आम बातें हैं। दूसरी ओर निष्ठुरता, विनाश, तथा अधःपतन के बीच सरलता तथा सहृदयता का सपना लेखिका की लेखन-यात्रा के साथी हैं। लेखिका अपनी कुछ कहानियों में स्पष्ट करती हैं कि आधुनिक जीवन में अर्थ-लोलुपता मानवता के मृत होने का एक कारण है। वह इस सत्य को कहानी की चरम सीमा पर लाकर इसे स्पष्ट करने में बराबर सफल रहती है। 'पशु' में मूक-बधिर पात्र की चेतना में निष्पाप मनुष्यत्व के मर्मांतक पतन की कथा भी रेखांकित होती है। 'मोहभंग' में नायिका संवेदना के स्तर पर टूटकर असहाय हो जाती है। 'परसू का कुआं' में गरीबी तथा कर्महीनता के भार से दबे एक युवक का जीवन-चरित उकेरा गया है, लेकिन चरम सीमा पर आकर अपरिचित परिवेश में मनुष्य के परिचित आवेग और अनुभूति का नाटकीय विकास भी हुआ है।

इन कहानियों के पात्र संवेगात्मक हैं। शायद इसी कारण 'मोहभंग' में पुलिस की नौकरी करने वाला भाई अपनी बहन को 'मूर्ख' कहकर संबोधित करता है। क्या वास्तव में उसकी बहन, तरादोई, संवेग के कारण मूर्खतापूर्ण व्यवहार करती है ? छोटे कुंअर की शारीरिक मृत्यु उसके संवेगमय वियोग की समर्थक है क्या ? इन सब कठिन प्रश्नों से लेखिका बच निकलती है। 'वंशबेल' का महाजन दमयंती से केवल वंशवृद्धि के लिए शारीरिक संबंध स्थापित करना चाहता है। दमयंती द्वारा की गई भ्रूणहत्या क्या इसी की प्रतिक्रिया है ? ये सभी प्रश्न प्रासंगिक हैं, पर लेखिका ने इन्हें स्पर्श नहीं किया है। फिर भी, ये सभी कहानियां इतनी मर्मस्पर्शी बन पड़ी हैं कि लेखिका की अनुभूति की तीव्रता एकदम सामने आ जाती है।

असम के सामाजिक इतिहास के प्रति भी मामोनी की अंतर्दृष्टि असाधारण है। 'वंशबेल' में हम देखते हैं कि सामंती युग की व्यवस्था, भावादर्श तथा संस्कारों की शृंखलाओं ने व्यक्ति को कैसे अपने वज्र कठोर बंधनों में जकड़ रखा है। विधवा

ब्राह्मण स्त्री के लिए बने नीति-नियमों को तोड़कर वेश्यावृत्ति करने वाली दमयंती के मन के किसी कोने में ऊंची जाति से संबंधित होने का भाव भी छिपा हुआ है। इसी प्रकार बेहद गरीबी का मारा 'एक अविस्मरणीय यात्रा' का चाय बेचने वाला बूढ़ा अपनी वंश-मर्यादा के अभियान को बचाए रखने के लिए बाढ़-नियंत्रण अधिकारी को रिश्वत देकर अपना काम निकलवाना नहीं चाहता और निरंतर दुख झेलता रहता है। केवल वही नहीं, उसका समूचा परिवार ही मृत होने के समान जीता है। उसकी निष्ठा तथा सत्यप्रियता, वास्तव में, वंश-मर्यादा का ही एक रूप है, जिसे वह किसी कीमत पर नहीं छोड़ सकता, चाहे इसके लिए उसके प्राण ही चले जाएं। इसी दरिद्रता के कारण उसका एक पुत्र ऐसा रास्ता चुन लेता है जिसके कारण बूढ़े व्यक्ति के लिए वंश-मर्यादा मात्र एक सपना रह जाती है। उसकी बूढ़ी पत्नी के मन में पुत्र के लिए ममता भरी है, पर बूढ़ा स्वयं उदासीन है। कहानी में जहां अतीत का वर्णन है, वहां बूढ़े व्यक्ति की आकृति का भी है। "एकाएक, थोड़ा परे, एक दुकान में से एक दुबली-पतली काया बाहर आई। वह एक पुरुष था जिसके हाथ में मिट्टी के तेल की लालटेन थी। वह ढीला कुर्ता तथा धोती पहने हुए था। धोती मुश्किल से उसके घुटनों तक ही पहुंच पा रही थी। ...उसके बाल लंबे थे और उन्हें उसने जूड़े की शक्ल में बांध रखा था। जूड़ा नीचे की ओर झूल रहा था।" "...मंद रोशनी में वह प्रेत-सा दिख रहा था।" "...उसकी आंखों के नीचे आड़ी-तिरछी रेखाएं साफ दिख रही थीं। उसके कुछ दांत गायब थे। गाल उसके धंसे हुए थे जिससे उसकी नाक और लंबी दिख रही थी। वह अनवरत रूप से गाए जा रहा था।"

दोतारे के साथ वह बूढ़ा व्यक्ति जो गीत गाता था, उसके बदले में पैसा लेना उसे स्वीकार नहीं था। यह वंश-मर्यादा के विरुद्ध था। यह गायन आत्मा की संतुष्टि के लिए था।

अचानक उसका उग्रवादी लड़का इधर-उधर जंगल में भटकता झोंपड़ी के भीतर चला आता है। उसके लिए उसकी बूढ़ी मां पहले से ही बेहाल थी। लड़के का चेहरा विनाश तथा बर्बरता का प्रतीक है।..."उसके गाल पर एक गहरा घाव था—आंख से लेकर होंठ तक। ...घाव से खून रिस रहा था। उसके होठों के नीचे का मांस अलग हुआ दिखता था, जिससे लालटेन की कंपकंपाती रोशनी में उसके दांत साफ झलक रहे थे।"

और जब लड़के की नजर अपनी बहन पर पड़ती है, जो कोने में बैठी भय से कांप रही है, तो वह गोली की तरह उस पर टूट पड़ता है और कहता है : "मैं तेरे इस पेट का मलीदा बना दूंगा... अरे, गंदी कुतिया, एक भारतीय सिपाही से प्रेम रचाती हो...!" फिर उसकी नजर अपने बूढ़े बाप के सामने पड़े पैसों की ओर जाती है और वह उन पर लपक पड़ता है। वे पैसे ग्राहकों के हैं। वह उन

पैसों से पुरानी कारबाइन खरीदना चाहता है। वह ग्राहकों से और पैसों की मांग भी करता है, "आप आसानी से कुछ और रकम दे सकते हैं तो लाइए, निकालिए। मेरे पास समय नहीं है।"

बेटा चला गया है तो बूढ़े व्यक्ति के होठों पर एक प्रकार की मुस्कान-सी दौड़ जाती है। एक अद्भुत मुस्कान है। वह हृदय-विदारक है।

काल-प्रवाह ने वंश-गौरव को अर्थहीन बना दिया है। अतीत के मोह ने असम के लोगों को वर्तमान के प्रति अक्षम कर दिया है। एक ओर रूढ़ियां तथा प्राचीन मृत पड़ी परंपरा है तो दूसरी ओर नेताओं और अधिकारियों द्वारा किया जाने वाला शोषण। दोनों समाज में फैली अशांति के कारण हैं। इन सब का परिणाम यह है कि आज का मानव वनांचलों के नरभक्षी पशुओं की हिंसा और बर्बरता को मात देने लगा है। 'एक अविस्मरणीय यात्रा' में मानव का ऐसा रूप ही सफलतापूर्वक सामने आया है।

कहानी-लेखन कला का जहां तक ताल्लुक है, लेखिका कभी-कभी लीक से हटकर भी लिखती है। विस्तार देते हुए भी वह परंपरा से हट जाती है। यहीं उसकी मौलिकता सामने आती है। कुछ कहानियां चरित्र-प्रधान हैं, जिनमें पूरी घटना मुख्य चरित्र के माध्यम से चित्रित की गई है। 'पशु' में हाथी पकड़ने वाले लोगों की पशुवृत्ति को अभिव्यक्ति मिली है। कृष्णकांत और निमाई का प्रेम, निमाई की मृत्यु, कृष्णकांत का अधःपतन और उसके द्वारा धोखा दिया जाना, सभी को मूक-बधिर शहाबुद्दीन की निगाह से देखा गया है। उसे मूक-बधिर दिखाकर लेखिका उसके लिए बहुत-सी बातें जानना जरूरी नहीं समझती। ढेर-सारी अनजानी बातें उसने संकेत में व्यक्त कर दी हैं। 'एक अविस्मरणीय यात्रा' के पाठक और मुख्य पात्र के बीच के संवाद के लिए लेखिका स्वयं उपस्थित रहती हैं। 'मोहभंग' में अधिकांश विवरण तरादोई की चेतना के माध्यम से व्यक्त हुआ है। 'परसू का कुआं' तथा 'वंशबेल' मात्र वर्णनात्मक कहानियां नहीं हैं, वे प्रतीकात्मक कहानियां हैं। 'पशु', 'एक अविस्मरणीय यात्रा' और 'द्वारका' जैसी कहानियों में संकेतों से भरा ऐसा प्रवाह है जिसे पाठक ऐसे ही पार नहीं कर सकता। उसे इधर-उधर संकेतों को पकड़ते हुए, कहानी के भीतर घुसकर उसके मर्म को समझना पड़ता है। आधुनिक कहानी की यही विशिष्टता है। लेखिका की कहानियों में अपने प्रत्यक्ष अनुभवों का स्वाभाविक चित्रण किया गया है। इनमें कोई-न-कोई सांकेतिक अर्थ छिपा रहता है। उदाहरणार्थ 'वंशबेल' की ये पंक्तियां द्रष्टव्य हैं : "चांदनी रात में उसे कुकुरमुत्ते के रंग के बादल आकाश में तोप का आकार लिए दिख रहे थे, और चांद उस व्यक्ति की तरह दिख रहा था जिसने किसी हिरन की खाल उतारकर और उसके टुकड़े-टुकड़े करके उसे आकाश में टांक दिया हो..."

मानो बादल और चंद्रमा दमयंती के शरीर के अंग हों। सौंदर्यमयी दमयंती

को देखकर मन में लालसा, क्रूरता, हिंसा और अंमगल का भाव भी आ जाता है। पीतांबर और दमयंती के शारीरिक मिलन की पृष्ठभूमि में कुछ अशुभ घटने का संकेत भी है और इस कहानी का मर्म भी यही है। पीतांबर की संभावी संतान, दरअसल, दो जिद्दी व्यक्तियों के मिलन का फल है। एक को धन की जुगाड़ करने और दूसरे को संतान का पिता बनने की जिद्द है। ऐसे ही 'मोहभंग' का परिवेश मृत्यु, श्मशान तथा प्राणहीन संभोग से बना है। तरादोई के प्रेम का सपना प्राणहीन तो है। वह कफन वाले बक्से में लेटकर सुख-लाभ करती है और श्मशान की राख निकालती रहती है, जैसे अपने प्रेमी के साथ विवाह का निमंत्रण-पत्र खोजती है, इतने समय से संजोए सपने के समाप्त हो जाने के बाद भी उसकी आंख में सूर्य उदय हुआ है। ''सूरज ब्रह्मपुत्र पर उग रहा था। बैगनी और भूरे रंग के बादलों के गुच्छे उससे चिपके हुए थे जिससे वह उस वेश्या के नुचे और पीले पड़े चेहरे की तरह दिख रहा था जो यह सोच-सोचकर परेशान थी कि जाने उसे अब कैसे अनचाहे अजनबी के साथ लेटना पड़ेगा...।''

मामोनी की इस कहानी में सूर्य की उपमा बदल-बदलकर प्रयुक्त होती है। कहानी के अंत में पाठक के मन में आशंका होती है कि नायिका प्रेमी से धोखा खाकर तथा प्रेम भाव में आस्था टूट जाने के कारण कहीं वेश्यावृत्ति ग्रहण न कर ले।

'पशु' में मूक-बधिर शहाबुद्दीन के भाषाविहीन प्रेम और कृष्णकांत तथा निमाई की निष्पाप प्रणयलीला को क्रूर और अर्थलोभी लोगों ने घेर रखा है। इस कहानी की पृष्ठभूमि में एक भयंकर जंगल है। ''आवश्यकता पड़ने पर वे क्या कुछ नहीं कर सकते थे ! वे आदमखोर शेर बन सकते थे जो अपने दांतों से शिकारियों के कपड़े तक चबा जाते हैं। ...उसके भीतर फिर वही प्रश्न उठा : क्या यह सब के साथ होता रहा है ? हां, सभी के साथ—लखनचंद्र, सुलेमान, रामनाथ, मटियूर, डंडी, सभी के साथ। उन सबके अब कितने लंबे-लंबे बाल थे ! ...उनके दांत भी तो तेज हो गए थे। ...क्या उनके हाथों और पांवों के नाखूनों पर खून के कतरे थे ?...''

शहाबुद्दीन ने निमाई को उन लोगों के प्रति सतर्क कर दिया था, किंतु वह समझ नहीं पाई थी। कृष्णकांत का संदेश देने के बहाने लखनचंद्र, निमाई को जंगल में बुलाता है। पर पाठक निमाई के साथ किए गए बलात्कार को एकाएक पकड़ नहीं पाता, केवल मूक-बधिर शहाबुद्दीन की उद्भ्रांत दशा से उसकी पहचान हो पाती है। इस नाटकीय परिवेश में कृष्णकांत भी उपस्थित है। ''...लेकिन कृष्णकांत को पहचान पाना अब असंभव हो रहा था। उसकी कलाई पर घड़ी थी, उसकी धोती बगुले के परों की तरह सफेद थी और उसके कुर्ते के सोने के बटन चमचमा रहे थे।...''

कृष्णकांत पिछली बार अपनी मित्रमंडली में दारू पीते समय, मस्ती में, अपनी पगड़ी वहीं छोड़ गया था। वह उसे ही लेने आया था। इसी कृष्णकांत ने एक बार कहा था : "... मैं तब तक चैन नहीं लूंगा जब तक हाथीदांत और हाथियों की तस्करी करने वालों को नंगा न कर लूं। मैं दरभंगा से आए उन तस्करों को सरकार को पकड़वा कर रहूंगा।"

लखनचंद्र ने अपने साथियों के साथ यौवन और सौंदर्य से भरपूर निमाई का जिस दिन बलात्कार किया, उसी दिन एक हाथी का शिकार भी हुआ। निमाई का बलात्कार करके सब के चले जाने के बाद जंगली हाथियों के एक झुंड ने उस तंबू को तहस-नहस कर डाला था जिसमें बलात्कारी टिके हुए थे। पर यह विडंबना ही है कि उस भोली-भाली आदिवासी लड़की का उपभोग करने वाले लोगों के मन में इस घटना की कोई प्रतिक्रिया नहीं हुई। केवल शहाबुद्दीन पानी से निकली मछली की तरह छटपटाता रहा। बहरहाल, इस घटना से पाठक की समझ में आ जाता है कि इस सामूहिक बलात्कार में कृष्णकांत भी शामिल था। कृष्णकांत इस कहानी के प्रथम और अंतिम भाग में स्वर्ग और नरक के समान अलग-अलग रूपों में दिख पड़ता है।

मैंने ये शब्द नेशनल बुक ट्रस्ट के लिए लिखे हैं। आशा करता हूं, पाठक थोड़े-से समय में जल्दी से लिखे इन शब्दों के माध्यम से मामोनी रायसम गोस्वामी की लेखनी के आश्चर्यजनक गांभीर्य तथा समृद्धि को अनुभव कर सकेंगे।

–हीरेन गोहाईं

वंशबेल

पीतांबर महाजन अपने घर के सामने बैठा था। उसके जूतों पर कीचड़ की मोटी तह जमी हुई थी। उसने उन्हें उतारा नहीं बल्कि वह उनकी ओर गर्व से देखने लगा। इस दूर-दराज गांव में केवल उसके और सत्र (मठ) के गोसाईं के पास ही तो ऐसे जूते थे।

पीतांबर ने पचास पार किए ही थे। एक समय वह काफी हट्टा-कट्टा था, लेकिन फिर चिंता से उसका स्वस्थ शरीर धीरे-धीरे दुबलाता गया। उसकी ठुड्डी के नीचे की खाल अब ढीली पड़कर लटकने लगी थी। दूसरों से बात करते समय उसकी आंखें भी सीधी नहीं दिखती थीं, एवं उसका सर भी झुका रहता था। उसकी नजरें अब हमेशा अपने पांव के पास जमीन पर गड़ी रहतीं, जैसे कि वे कुछ खोज रही हों।

भारी वर्षा ने जमीन को नम बना दिया था और साथ ही गांव के दोनों ओर पानी जमा हो गया था। अधनंगे बच्चे या तो पानी में खेलते रहते या इधर-उधर खड़े रहते। उनके हाथों में लंबे-लंबे बांस होते जिनसे वे मछली पकड़ते। बारिश की वजह से हर तरफ तरह-तरह के पौधे और हेलसी तथा नलकोचू किस्म की बेलें उग आई थीं। उड़ने वाले मेंढक एक पोखर से उछलकर दूसरे पोखर में जा पहुंचते और कभी-कभी पास से गुजरते लोगों से भी जा टकराते।

एक गुलगुला-सा नंग-धड़ंग बालक नलकोचू में फंसी अपनी बंसी की डोरी छुड़ाने की कोशिश कर रहा था। पीतांबर उसे देखे जा रहा था। एकाएक उसकी विचार-शृंखला टूटी। गांव का पुजारी, कृष्णकांत, अपनी खड़-खड़ करती आवाज में उससे कह रहा था, "तुम्हारा अपना तो कोई बच्चा है नहीं। तब तुम उस बच्चे को भूखी निगाहों से क्यों देख रहे हो ? जितनी बार मैं मंदिर गया हूं, या वहां से लौटा हूं, मैंने तुम्हें यहीं बैठे पाया है। तुम्हारी पत्नी अब कैसी है ? क्या वह पहले से बेहतर है ?"

पीतांबर से उत्तर देते नहीं बन पा रहा था। उसने रुक-रुककर कहा, "मैं कई बार उसे गुवाहाटी के सरकारी अस्पताल में ले जा चुका हूं। कोई फायदा नहीं हुआ। उसके समूचे शरीर पर सूजन आ गई है।"

"तब तो संतान की कोई उम्मीद नहीं दिखती। है न ? बड़े दुख की बात है। तुम्हारा वंश चलाने वाला तो अब कोई हो नहीं सकता।"

पीताबंर ने कोई उत्तर नहीं दिया। पुजारी थोड़ी देर तक उसके पास खड़ा रहा। वह अपने घुटनों से ऊपर एक पुरानी धोती पहने हुए था। उसके बदन पर रेशम का कुर्ता था। उसका रंग सूखी भेड़ की खाल की तरह था। उसके कंधों पर एक सूती चादर थी और उसके मुंह में केवल दो ही दांत थे। इसलिए उसके गाल हमेशा भीतर धंसे रहते जिससे उसके चेहरे पर दो गड्ढे दिखाई देते। वह जब भी बात करने के लिए मुंह खोलता, उसके चेहरे पर कुछ ऐसा भाव आ जाता जिससे यों ही हंसी आ जाए। आंखें उसकी छोटी-छोटी थीं जिनमें धूर्तता की चमक विराजमान रहती। उसके सर पर बाल भी बहुत कम थे, जिनमें वह बीच से मांग काढ़ता था। उसने झुककर पीतांबर के कान में फुसफुसाते हुए कहा, "दूसरी शादी के बारे में तुम्हारा क्या विचार है, रे ?"

पीतांबर ने अपनी चादर को थोड़ा हटाकर उसके एक सिरे से अपना चेहरा पोंछा। वह अभी उत्तर देने को ही था कि दोनों की आंखें पास से गुजरती एक युवती पर जा टिकीं। युवती का नाम दमयंती था, और वह सत्र के एक युवा पुजारी की विधवा थी। वर्षा के कारण उसके कपड़े भीग गए थे और उसके शरीर से चिपक रहे थे। उसकी त्वचा का रंग वैसा ही था जैसा कि खौलते हुए गन्ने के रस की घनी झाग का होता है। कद-काठ तो उसका अधिक नहीं था, पर थी वह बेहद आकर्षक। लोग उसके बारे में हर तरह की बातें कहते थे। कुछ तो उसे वेश्या तक कहते थे। सत्र की शायद वह पहली ब्राह्मण वेश्या थी।

कृष्णकांत ने फौरन आवाज लगाई, "अरी दमयंती, कहां से आ रही है ?"

"देख नहीं रहे ये रेशम के कोवे ?"

"तो तुमने अब उन मारवाड़ी व्यापारियों से मेलजोल बढ़ाना शुरू कर दिया है ? हां, कहावत भी है न कि जरूरत के वक्त लोग बकरी की टांगें धोने पर भी उतारू हो जाते हैं ! है न ?"

दमयंती चुप रही। झुककर उसने अपने लहंगे की तहों को निचोड़कर उनसे पानी निकाला। उसकी चोली काफी कस गई थी और ऊपर को उठ आई थी, जिससे उसकी गोरी त्वचा दिखने लगी थी। वह गोरी त्वचा दोनों पुरुषों को लालायित करने लगी।

कृष्णकांत थोड़ा संभला और फिर उसने तुरंत अपनी नजर दूसरी तरफ घुमा ली। लेकिन पीतांबर उसे एकटक देखता रहा और गद्‌गद होता रहा। दमयंती अब सीधी खड़ी थी। उसने उनकी तरफ देखा नहीं। वह अपने ध्यान में ही आगे बढ़ गई। उसकी मेखला बराबर आवाज किए जा रही थी।

"मैंने सुना है कि वह मांस, मछली—सब कुछ खाती है ?"

कृष्णकांत ने अपना सर हिलाया और बोला, "इस लड़की ने तो बंगरा ब्राह्मणों की नाक कटवा दी है। विधवाओं के लिए जो विधान बना है, इसने उसकी रेंड़ मारकर रख दी है।"

"हां, हां। मैंने इसे एक बार देखा था। धान की दो टोकरियों के बदले खड़िया मछली का एक जोड़ा ले रही थी।"

कृष्णकांत के मुंह से एकदम निकल पड़ा, "अरे, अरे ! विधवा और खड़िया मछली ! छी, छी ! कलियुग ! घोर कलियुग !"

"चुप ! ब्राह्मण कहीं का ! अब तुम सारी दुनिया में इसका ढिंढोरा पीटकर कहोगे कि एक ब्राह्मण विधवा मछली खाती है ! अरे, जहां देखो अब ऐसा ही है। चाहे ब्रह्मपुत्र के उत्तर में चले जाओ या उसके दक्षिण में। पुरानी रस्में खत्म कर देनी चाहिए..."

पीतांबर के इर्द-गिर्द कुछ मक्खियां घूं-घूं करने लगी थीं। उसने अपनी चादर के पल्लू से उन्हें भगाया। इस दौरान कृष्णकांत पास के एक पेड़ के ठूंठ पर गहरी सांस लेता हुआ जा बैठा था।

पीतांबर ने प्रश्न किया, "तुम्हारे उन यजमानों का क्या हाल है ? वही जिनके लिए तुम पूजा कर रहे थे ? आजकल तुमसे कैसे पेश आते हैं ?"

"सब कुछ तो तुम जानते हो, और फिर भी पूछ रहे हो ? मेरे बड़े भाई का मुझसे झगड़ा हो गया है। ज्यादा काम तो उसी ने हथिया लिया है। मैं तो एक तरह से बरबाद हो गया हूं।"

"भैया, तुम्हें संस्कृत तो ठीक से आती नहीं। तुम्हारे भाई ने चारों तरफ यह खबर फैला दी है। इसीलिए तुम्हारे यजमान अब तुमसे बिदकने लगे हैं।"

कृष्णकांत ने इसका विरोध करना चाहा। बोला, "खूब ! बहुत खूब ! जरा बताओ तो, उत्तरी किनारे के कितने ब्राह्मण नरहरि भगवती की तरह संस्कृत बोल सकते हैं ? हम दोनों ने साथ-साथ ही शिक्षा ग्रहण की थी। उसकी अक्सर बेंत से पिटाई होती, लेकिन मेरी एक बार भी नहीं हुई। मैं जानता हूं, मेरे यजमान क्यों मुझसे विमुख हुए। इधर तो चारों वेदों में पारंगत ब्राह्मणों को भी भूखा मरना पड़ रहा है। पहले यजमान से हर महीने एक जनेऊ, दो धोतियां और पांच रुपए प्राप्त करना आसान था। अब तो कोई इन बातों को मानता ही नहीं। अपना खर्चा बचाने के लिए हमारा पुराना यजमान मणिकांत शर्मा अपने दोनों बेटों को कामाख्या ले गया और वहीं उनका यज्ञोपवीत करवा दिया गया। माइतानपुर के यजमानों ने अब अपने माता-पिता का श्राद्ध एक साथ ही करवाना शुरू कर दिया है।"

जब तक कृष्णकांत अपनी बात कहता रहा, पीतांबर बिलकुल चुप रहा। उसने न तो सहमति दिखाई और न ही असमहति। उसके दिमाग में तो, बस, दमयंती का गोरा रूप ही चक्कर काटे जा रहा था। उसने त्वचा की ऐसी कोमलता

और चमक पहले कभी नहीं देखी थी। और ऐसी बात भी नहीं कि उसने औरत के मांस को कभी छुआ न हो। एक तो उसकी पहली पत्नी थी। फिर वह दूसरी वाली थी जिसे उसने बच्चा पाने की उम्मीद से खरीदा था। वह तो अब गठिया के कारण बिस्तर से लगी है और उसका समूचा शरीर सूखकर ठठरी हो रहा है, जैसे कि वह हड्डियों का मात्र ढांचा हो जिसे बिस्तर के एक कोने में पटक दिया गया हो। वह कई बार गुवाहाटी के अस्पताल तक पैदल चलकर गया था, यहां तक कि उसके जूतों के तल्ले भी घिस गए थे। उसे यही डर खाए जा रहा था कि वह निस्संतान मर जाएगा और उसकी वंशबेल खत्म हो जाएगी। उसका यह डर तब और बढ़ गया था जब पुजारी तथा दूसरे लोगों ने उसे हर घड़ी जताना शुरू कर दिया था, जो कि कटे पर नमक डालने वाली बात थी। इससे उसकी दिमागी हालत बिगड़ने लगी थी।

पीतांबर का घर कच्चा था। उसकी बीमार पत्नी भीतर बिस्तर पर लेटे-लेटे साफ देख सकती थी कि पुजारी बाहर खड़ा है। उसने अपनी आंख के इशारे से पास ही खड़े एक नौकर को बुलाया और उससे कहा कि वह बाहर पुजारी के बैठने के लिए एक मूढ़ा पहुंचा आए। पीतांबर अपने में डूबा हुआ था। उसने न यह ख्याल किया कि मूढ़ा कब आया और न यह कि वह कैसे आया।

कृष्णकांत उठकर खड़ा हो गया और बोला, "गांव के लोग तुम्हारे बारे में बेपर की उड़ा रहे हैं। वे कहते हैं कि तुम्हारा दिमाग चल गया है। तुम क्या कहते हो इस बारे में ? तुम्हें पता ही होगा कि इस दुनिया में ऐसे बेशुमार लोग हैं जो तुम्हारी तरह निस्संतान हैं। अब इस पर दूसरी तरह से गौर करो। कहो कि आखिर यह सब माया है, प्रपंच है।"

पीतांबर का सर झुक गया था। पुजारी को उसके सफेद बाल साफ दिख रहे थे। उसके कपड़ों की हालत भी खराब थी। वे घिस भी रहे थे और उजले भी नहीं दिखते थे। केवल उसके जूते ही सही-सलामत थे, चाहे वे कीचड़ से लथपथ थे। उसे इस आदमी पर कुछ दया-सी आ गई। कभी वह इतना बांका था कि लोग उसे 'गोरा पलटन' कहकर संबोधित करते थे। अब उसके पास पैसा था, धान से भरपूर खलिहान था, सब कुछ था, पर इसके बावजूद वह खुश नहीं था।

एकाएक कृष्णकांत के मन में एक विचार आया। उसने इधर-उधर देखा। पीतांबर के सोने के कमरे का दरवाजा खुला था और उसकी पत्नी बिस्तर पर अधलेटी हो रही थी। उसे उसकी आंखें भी दिख रही थीं। वे वैसे ही जल रही थीं जैसे अंधियारे जंगल में किसी जानवर की जलती हैं। लग रहा था जैसे कि वह अपनी पूरी ताकत से यह जानने की कोशिश कर रही है कि उसके पति के साथ पुजारी की क्या बातचीत हो रही है। उन जलती आंखों की चमक इतनी तीव्र थी कि दूर से ही उनमें व्याप्त वेदना का एहसास हो रहा था। पर पुजारी को इसका यकीन नहीं

हो पा रहा था।

उसने, यानी पुजारी ने आखिर निर्णय कर ही लिया। थोड़ा झुककर उसने पीतांबर के कान में फुसफुसाया, "मैं इस यातना से तुम्हें बाहर निकाल सकता हूं।"

"कोई और समाधान सूझा है ?"

"हां, और इस बार बिलकुल पक्का है।"

"मैं तुम्हारी बात समझ नहीं पा रहा।"

"इस बार असफल गर्भ का सवाल ही नहीं उठता। चार बार यह गर्भपात करवा चुकी है और हर बार इसे अपनी खुराफात से छुटकारा पाने के लिए भ्रूण को अपने घर के पिछवाड़े में बांस के झुंड में दफनाना पड़ता है।"

पीतांबर स्तब्ध रह गया। वह एकाएक बोला, "तुम दमयंती की बात कर रहे हो ?"

"हां ! आजकल तो ब्राह्मण कन्याएं मछुआरों से ब्याह रचाने लगी हैं। धनेश्वरी नदी के किनारे रहने वाले गोसाईं की बेटी ने एक मुसलमान लड़के से शादी की है। महात्मा गांधी हमें रास्ता दिखा गए। इसीलिए मैं तुमसे कह रहा हूं कि..."

लगा जैसे कि पीतांबर में आवेश की लहर उठी। वह बोला, "कहना क्या चाहते हो ?"

"अगर तुम चाहो तो दमयंती को अपना बना सकते हो !" कृष्णकांत ने अपना सर घुमाकर एक बार फिर पीतांबर की रुग्ण पत्नी की ओर देखा, जिसकी आंखें अब भी वैसे ही उसके चेहरे पर अंगारों की तरह दहक रही थीं। वे लगातार उसे देखे जा रही थीं।

पीतांबर उठकर खड़ा हो गया। कृष्णकांत उससे वही कह रहा था जिसके बारे में वह अब तक केवल स्वप्न ही देखता रहा था, और वह भी बिलकुल स्पष्ट शब्दों में। वह उसकी ओर बढ़ा और आभार तले दबकर उसने उसके हाथ को दबाना चाहा, पर कृष्णकांत पीछे हट गया। उसने कुछ देर पहले ही स्नान किया था और उसे गोसाईं के यहां पहुंचकर मुरलीधर को नित्यप्रति का प्रक्षालन करवाना था। यदि पीतांबर उसे छू देता तो उसे फिर से स्नान करना पड़ता।

पर पीतांबर की हालत तो ऐसे हो रही थी जैसे डूबते को एकाएक रंगों भरा पाल दिख गया हो ! वह समझ नहीं पा रहा था कि वह पुजारी के हाथ छूए या पांव !

"तब तो यह तुम्हारे मन में काफी अर्से से चल रहा होगा ? क्यों ?"

कृष्णकांत ने उस रुग्ण स्त्री की ओर एक बार फिर देखा। पर इस बार उसकी आंखें पूरी तरह बंद थीं। शायद उसे दर्द का दौरा उठा था। पीतांबर पुजारी के पांव के पास झुक गया और उससे अनुनय करता हुआ बोला, "केवल आप ही यह

कर सकते हैं। कृपया मेरी मदद कीजिए। मुझे लड़की चाहिए। बेशक, वह ब्राह्मण है। मैं उसे हर प्रकार का सुख दूंगा।''

कृष्णकांत के पोपले मुंह पर एक क्षण के लिए मक्कारी-भरी मुस्कान आ गई। ''अच्छा, ठीक है। देखूंगा। मुझे बार-बार इधर आना होगा। उसकी दो छोटी बेटियां भी हैं। उनके बारे में भी सोचना होगा।''

पीतांबर के भीतर कई भाव आ-जा रहे थे। वह अब अपने सोने के कमरे की ओर बढ़ा। जब वह उसमें दाखिल हुआ तो उसने देखा कि उसकी पत्नी ने अपनी आंखें खोली हुई हैं और वह उसे देख रही है। अब पत्नी ने देखा कि उसके पति ने लकड़ी का बक्सा खोला है। पैसा और दूसरा कीमती सामान उसी में रहता था। कुछ देर बाद पति ने वह बक्सा बंद कर दिया और पुजारी के पास लौट गया।

कृष्णकांत के हाथ में अब बीस रुपए नकद थे और वह मजे-मजे में गुनगुनाता हुआ आगे बढ़ रहा था।

एक सप्ताह बीत गया। पीतांबर पुजारी का जोरों से इंतजार कर रहा था। उसका समूचा अस्तित्व जैसे कि किसी रंग में रंगा हुआ था। इन पिछले सात दिनों में उसने दमयंती को कई बार गोसाईं के यहां जाते देखा था। जनेऊ बनाने के लिए उसने रूई उठाई हुई होती। उसकी देह को देखते ही उसके भीतर खलबली मच जाती। वह उसके विचार से इतना घिरा रहता कि उसके सामने तरह-तरह के दृश्य उभरने लगते। उसे दमयंती हर बार वस्त्रहीन दिखाई देती जिससे वह उसके सुंदर, गोरे बदन को जी भरकर देखता।

लोगों का कहना था कि दमयंती का जन्म कामरूप में धनेश्वरी नदी के किनारे रऊता में हुआ था। ऐसा विश्वास भी किया जाता था कि इतनी सुंदर बालाएं और कहीं देखने को नहीं मिलतीं जितनी धनेश्वरी के दोनों तरफ रहने वाली ब्राह्मण बालाएं होती हैं। पीतांबर अब पूरी तरह आश्वस्त था कि यह उक्ति शत-प्रतिशत सही है।

पीताबंर ने अब हर रोज अपने घर के बाहर बैठना शुरू कर दिया। ये दिन भी ऐसे थे कि दमयंती सड़क के दोनों ओर बहने वाले नालों के किनारे उग आई कलमी और दूसरी वनस्पतियां बटोरने नियमित रूप से आती। उसकी दोनों नन्हीं बेटियां भी प्रायः उसके पीछे-पीछे चली आतीं। वे बिलकुल डंठल थीं और नंगी ही रहती थीं। मां का शरीर हृष्टपुष्ट और कामेच्छा जगाने वाला, और बेटियां भुखमरी की शिकार। दमयंती के लंबे, भूरे बाल पीतांबर की आंखों में बस जाते।

एक दिन पीताबंर ने हिम्मत जुटा ही ली। दमयंती जब हरे पत्ते तोड़ रही थी तो वह उसके निकट गया और बोला, ''अगर तुम हर रोज इसी तरह कीच-भरे पानी में खड़ी रहीं तो तुम्हें ठंड लग जाएगी।''

दमयंती ने एक बार उसकी ओर केवल देख भर लिया। बोली कुछ भी नहीं।

उसकी आंखें विस्मय से खुली थीं।

पीतांबर ने फिर कहा, "मैं नौकर को भेज देता हूं। तुम उसे बता देना। जितनी वनस्पति चाहिए, वह इकट्ठी कर देगा। और..."

लेकिन उसका वाक्य अधूरा ही रहा। दमयंती ने हिकारत भरी, तीखी नजरों से जैसे ही उसकी ओर देखा, पीतांबर की आंखें झुक गईं। वह तुरंत वहां से हट गया, और लौटकर अपने घर के सामने वाले ठूंठ पर जा बैठा। उसने देखा कि उसकी पत्नी टूटे पंखों वाले पक्षी की तरह फिर बिस्तर पर लुढ़क गई है। सुबह वह बेहतर दिख रही थी। कमरे में थोड़ा घूमी भी थी। लेकिन अब फिर बिस्तर की मेहमान हो गई थी।

उसके भीतर फिर क्रोध घुमड़ उठा। उसने तीक्ष्ण दृष्टि से उसकी ओर देखा। एक समय उसे यह भी लगा कि उसकी बीमार देह में उसके सूखे जोड़ क्रीं-क्रीं कर रहे हैं। उसका दिल उससे भर गया था। वैसे तो यह उसे दवाई देने का समय था, लेकिन वह उठा नहीं। उसने अपने जूतों की तरफ देखा, फिर अपनी जेब से रुमाल निकाला और उन्हें साफ करने लगा। साथ ही वह बार-बार सड़क की ओर भी देख लेता। वह कृष्णकांत के लिए उतावला हो रहा था।

एकाएक उसे बैलगाड़ी की आवाज सुनाई पड़ी। वह जानता था कि यह बैलगाड़ी क्यों आई है। उसके आसामी उसके हिस्से का बोका धान लाए होंगे। बोका धान की फसल जुलाई के महीने में होती है। उसे धान से लदी बैलगाड़ियों को देखकर बहुत खुशी होती थी। वह बड़े संतोष से नई फसल की गंध अपने भीतर भर लेता और गाड़ियों से उतरती टोकरियों की गिनती करने में लग जाता। लेकिन आज वह अपनी जगह से टस से मस नहीं हुआ। हां, उसके नौकर जरूर बाहर आए और खलिहान की ओर टोकरियां ले जाने लगे। जब यह काम पूरा हो गया तो असामियों को चाय, गुड़ और भुना चावल दिया गया जिसे उन्होंने बड़े चाव से खाया। खा चुके तो वे कुएं की ओर बढ़े। वहां उन्होंने अपने हाथ-पांव धोए और फिर अपने लिए अलग रखी गई पान-सुपारी का सेवन करने लगे।

सब कामों से निपट चुके तो वे पीतांबर के पास विदा लेने आए, लेकिन उसकी अन्यमनस्कता और चुप्पी देखकर हैरान रह गए। फिर जैसे कि उन्होंने मन-ही-मन कहा, 'अरे, आपके बच्चे तो हैं नहीं। खलिहान धान से लबालब भरे पड़े हैं। कौन खाएगा यह सब ? आप बूढ़े भी तो हो चले हैं। देवी-देवताओं की मनौती करें और जितना दान-पुण्य कर सकते हैं, करें।'

पीतांबर घर के भीतर गया और कुछ पैसा ले आया। फिर उसने बारी-बारी से सबको कुछ-न-कुछ राशि दी और उन्हें विदा किया। पर उसकी चुप्पी बरकरार रही। अब वह फिर अपनी पहले वाली जगह पर आ बैठा था और खुले दरवाजे में से उसकी आंखें भीतर बिस्तर से लगी पत्नी पर गड़ी थीं। पत्नी की आंखें खुली

थीं। पलंग के नीचे एक गिलास पड़ा था। शायद उसने थोड़ा पानी पिया था। दवाई लेने का समय कब का निकल चुका था।

आखिर वह उठ खड़ा हुआ ताकि भीतर जाकर पत्नी को दवाई दे सके। जूते उतारकर उसने उन्हें एक कोने में रख दिया। अभी वह दहलीज पार करने को ही था कि पीछे से उसे खांसने की आवाज सुनाई पड़ी। कृष्णकांत ही था। वह तुरंत मुड़ा और जूते पहन लिए। उसकी पत्नी की आंखें उसके पीछे-पीछे लगी रहीं। वह उम्मीद लगाए हुए थी कि अब उसे दवाई मिल जाएगी। पर पीतांबर के लौट जाने से वह नाउम्मीद हो गई और उसने अपनी आंखें फिर बंद कर लीं। उन आंखों की अग्नि अब बुझ चुकी थी। केवल राख ही बाकी थी उनमें।

पीतांबर व्यग्र हो रहा था। बोला, ''बापू, क्या खबर लाए हो मेरे लिए ? फटाफट बताओ।'' वह इतना व्यग्र था कि कृष्णकांत को बैठाने का भी उसे ख्याल न रहा। उसने फिर कहा, ''बताओ, क्या खबर है ?''

पुजारी ने चारों तरफ अपनी नजर घुमाई। रोगी स्त्री लाश की तरह बिस्तर पर पड़ी थी। वह अब कुछ सुन भी नहीं पा रही थी।

पुजारी ने पीतांबर के कानों में फुसफुसाया, ''ध्यान से सुनो। मुझे एक खबर मिली है। इस समय उसका गर्भाशय बिलकुल खाली है। अभी मुश्किल से एक महीना ही हुआ है जब उसने अपनी पिछली करतूत का फल जमीन में दबाया। उसकी छोटी बेटी कह रही थी कि इस बार उसकी मां ने उस कुदाल से कब्र खोदी थी जो उसे साइकिल पर सवार होकर कालेज जाने वाले छात्र से मिली थी। अमीर घर का लड़का है वह। बस, यों ही है, चरित्र-वरित्र कुछ नहीं उसका। कहने को कालेज के लिए घर से चलता था, लेकिन आता था सीधा दमयंती के यहां। उसी के यहां पहुंचकर चावलों की टोकरी में अपनी किताबें छिपा देता था और कालेज में देने के लिए जो फीस लाता था, वह उसके बनाव-शृंगार पर खर्च कर डालता था।''

पुजारी की आवाज अब और भी धीमी हो गई थी। वह महज फुसफुसा रहा था, ''सीधा फर्श पर लेकर उसे पड़ जाता। छोटी बच्चियों के सामने ही। हरे ! हरे ! बड़े बेशर्म होकर आपस में लगे रहते। इस बार तो उसी छात्र का बीज रहा होगा।''

पीतांबर ने सब कुछ सुना, लेकिन ऐसे जैसे कि सुन्न हो रहा हो।

पुजारी ने अपनी बात जारी रखी, ''मैंने उससे तुम्हारे बारे में बात की थी। वह एकदम लाल-पीली हो गई, बल्कि उसने जमीन पर थूक दिया। कहने लगी, 'वह कुत्ता ! कैसे हिम्मत की उसने ऐसी बात मुझ तक पहुंचाने की ? जानता नहीं वह कि मैं यजमानी ब्राह्मण कुल से हूं और वह कीड़ा नीच जाति का महाजन है ?' मैंने उससे कहा कि जब वह पाप के कीचड़ में लोट लगा रही है तो ऊंची

जाति और नीच जाति का क्या महत्व ? कोई ब्राह्मण लड़का तो उससे शादी करने की सोच भी नहीं सकता। फिर विधवा से शादी करेगा भी कौन ? और उससे, जिसकी बेटियां भी हों ? कम-से-कम तुम उससे शादी करने को तो तैयार हो। है क्या वह ? गन्ने के पोर की तरह चुसी हुई। उच्छिष्ट। मैंने उसे साफ-साफ कह दिया कि तुम पंचायत की रजामंदी भी ले लोगे और हवन करके विधिवत उससे शादी करोगे। उसने तुम्हारी पत्नी के बारे में पूछताछ की। मैंने उसे बताया कि तुम्हारी पत्नी उस तिनके की तरह है जो हवा के झोंके से कभी भी उड़ सकता है। मैंने यह भी कहा कि तुम उसे बड़े आराम से रखोगे और यह भी कि पूरे सत्र में केवल तुम ही हो जो महंगे जूते पहनते हो। एकाएक उसने रोना शुरू कर दिया। पता नहीं, रोने क्यों लगी ? फिर अपनी चादर से अपने आंसू पोछते हुए बोली, 'आजकल मेरी तबीयत ठीक नहीं रहती। मैं चाहती हूं कि मुझे ऐसा सहारा मिले जो ठोस हो और बना रहने वाला हो।' मैंने उससे कहा, 'तुम्हारी तबीयत ठीक कैसे रह सकती है ? मैंने सुना है कि तुमने अपने पेट से चार-पांच बार कचरा निकलवाया है। अगर पंचायत ने इस बात को पकड़ लिया तो समझ लो पूरे सत्र के लिए मुसीबत खड़ी हो गई। तुम्हारे यहां अगर कोई पानी का गिलास भी लेने गया तो उसे बीस रुपए से कम जुर्माना नहीं होगा। तुम्हारा लिहाज इसीलिए हुआ है कि तुम ब्राह्मण हो। लेकिन कब तक चलेगा यह ?' उसका कहना था, 'मैं कर भी क्या सकती हूं ? मुझे जिंदा तो रहना ही था। अब मेरे पास न तो जनेऊ का काम आ रहा था और न ही मुरमुरों का। मुझे तो अब भ्रष्ट और अपवित्र समझा जाने लगा था। और मेरे असामी ? वे सब चोट्टे हो गए हैं। धान का मेरा हिस्सा भी नहीं देते। मेरी मजबूरी का फायदा उठाते हैं। ऐसे हालात में मैं इन दो नन्हीं बच्चियों को लेकर कहां जाती ? मैंने लगान भी चुकता नहीं किया। एक दिन मेरी जमीन की भी नीलामी हो जाएगी। बताओ, क्या करूं ?' ''

पीतांबर का धैर्य खत्म हो रहा था, ''मेरे प्रस्ताव का क्या हुआ ?''

''हां, हां, मैं उसी पर आ रहा हूं। वह तुमसे मिलना चाहती है। पूर्णमासी की रात को अपने ठिकाने पर, पिछवाड़े में धान कूटने वाले कोठे में।''

पीतांबर गद्गद हो गया। कृष्णकांत ने इस मौके को हाथ से जाने न दिया और उसके कान में फुसफुसाया, ''चलो, मेरे लिए चालीस रुपए निकालो। मच्छरों ने नाक में दम कर रखा है। मैं एक मच्छरदानी खरीदना चाहता हूं।''

पीतांबर घर के भीतर गया। उसने देखा कि उसकी पत्नी पूरी तरह जगी हुई है। उसने इस बात की चिंता नहीं की। वह सीधा अपनी लकड़ी की सदूंकची के पास पहुंचा और उसमें से पैसे निकालकर बाहर जाने के लिए मुड़ा। रोगी स्त्री उसकी ओर टकटकी लगाए देखे जा रही थी। वह एकाएक भड़क उठा, ''क्यों मुझे इस तरह घूर रही हो ? मैं तुम्हारी आंखें नोच लूंगा।''

कृष्णकांत ने सुना। वह सब कुछ समझ गया। पीतांबर से पैसा लेते हुए धीरे से बोला, "देखो, अगर यह ज्यादा घूरती हो तो इसे थोड़ी अफीम दे दो। तुम्हारी पहली पत्नी की तरह यह झगड़ालू नहीं है। शायद इसे इस बात का रंज है कि वह तुम्हारे लिए बच्चा पैदा नहीं कर सकी।" और यह कहकर वह अपने पोपले मुंह से हंसा।

रोगी स्त्री ने पहले की तरह अपनी आंखें बंद कर लीं और बिस्तर पर वैसी की वैसी पड़ी रही। पुजारी अब संजीदा हो आया था। वह कहे जा रहा था, "लेकिन उस कुतिया को पैसे की बहुत भूख है। अब सब तय हो चुका है। तुम उसे उसी के ठिकाने पर दबोच सकते हो।"

पीतांबर ने भीतर सो रही स्त्री पर एक नजर डाली। उतनी दूरी से भी वह देख सकता था कि उसके माथे पर पसीने की छोटी-छोटी बूंदें चू आई हैं।

•

अगस्त का महीना था और पूर्णमासी की रात थी। पीतांबर ने अपने सबसे बढ़िया कपड़े निकाले और अपने जूतों को अपने हाथ से इस तरह साफ किया जैसे कि वह उन पर स्नेह उंड़ेल रहा हो। फिर उसने आइना उठाया और बाहर आंगन में खड़ा-खड़ा उसमें अपना चेहरा निहारने लगा। अभी सुबह ही उसने शेव बनाई थी। आइने में अपना चेहरा निहारते समय उसे उस पर झुर्रियां भी दिख गईं। जो एक-दूसरे को काट रही थीं। उसे लगा, उसका चेहरा ठीक वैसे ही है जैसे कि नाल में फंसी मछली।

वह दमयंती के घर की ओर चल पड़ा। रास्ते में साल का घना जंगल पड़ता था। उसका घर जंगल के पार, गांव के बाहरी हिस्से में था। एक तरह से यह जगह आदर्श थी, क्योंकि दमयंती यहां निश्चिंत होकर जो मन में आए, कर सकती थी।

चांदनी रात में उसे कुकुरमुत्ते के रंग के बादल आकाश में तोप का आकार लिए दिख रहे थे, और चांद उस व्यक्ति की तरह दिख रहा था जिसने किसी हिरन की खाल उतारकर और उसके टुकड़े-टुकड़े करके उसे आकाश में टांक दिया हो। पर उसकी चमक अद्भुत थी।

अचानक चांद अब पीतांबर को नग्न, मादकता से लहकती दमयंती के रूप में दिखने लगा। उसने उसके उरोजों की कल्पना करनी चाही। वे तो गाभिन बकरी के कोमल और गोल पेट की तरह होंगे। और उसकी देह की काठी ? सीधी, बांस की कोमल छड़ की तरह। उसने अपनी आंखें झुका लीं—नहीं, नहीं, वह आकाश की ओर और नहीं देख सकता। वह तेज-तेज चलने लगा।

साल के जंगल के पार उसे रास्ता काटता गीदड़ों का एक झुंड दिखाई दिया। पर अब वह दमयंती के घर के फाटक के पास पहुंच चुका था। वह चुपके से

उसके भीतर हो लिया। वह अब सहन में पहुंच चुका था। एक कमरे में मद्धिम-सी, मिट्टी के तेल की ढिबरी जल रही थी। उसने भीतर झांका। एक जगह कटहल का ढेर लगा था और वहीं चावल की टोकरियां पड़ी थीं। एक बच्ची वहीं गहरी नींद सो रही थी। दूसरी बच्ची छोटी-सी स्लेट पर कुछ लिख रही थी। दमयंती पिछवाड़े के कमरे से पीतांबर की हर गतिविधि पर आंख रखे हुए थी। वहीं से उसने पुकारा, "अरे, इधर। यहां !"

ड्यूटी पर मुस्तैद किसी सैनिक की तरह पीतांबर तुरंत मुड़ा और उसकी ओर बढ़ गया। धान कूटने वाले धोड़े के पास एक मिट्टी का दीया जल रहा था। दमयंती एक टूटी हुई दीवार के पास खड़ी थी। पीतांबर उससे भयभीत था। वह उसकी आंखों में देखने की हिम्मत जुटा नहीं पा रहा था। फिर उसे एकाएक लगा कि यह सब भ्रम-मात्र है; दीये की रोशनी में दिखती उसकी आकृति भी भ्रम ही है। लेकिन उसके विचारों की शृंखला जल्दी ही टूट गई। उसने सुना। वह कह रही थी, "कुछ पैसे लाए हो ?"

वह स्तब्ध रह गया। उसे उम्मीद न थी कि उसका पहला प्रश्न यही होगा। वह झट से बोला, "ये रहे। पकड़ो। मेरा जो कुछ है, सब तुम्हारा है।" उसने अपनी कमर में खोंसा एक सुतली वाला बटुवा निकाला और उसे उसके हाथ पर रख दिया। दमयंती ने वह बटुवा तुरंत अपने ब्लाऊज के भीतर वक्षोजों के बीच संभाल लिया। फिर उसने दीया उठाया और उसे उस कमरे में ले गई जहां पहले उसकी एक बेटी अपना पाठ याद कर रही थी।

दोनों लड़कियां अब तक गहरी नींद में डूब चुकी थीं और एक-दूसरे से चिपट रही थीं। दमयंती पीतांबर को बगल के कमरे में ले गई। वहां सीलन भी थी और अंधेरा भी। वहीं उरियाम (अमरूद) की लकड़ी की एक खटिया पड़ी थी। यह खटिया उसके मृत पति को गोसाईं की अंत्येष्टि के समय मिली थी। उसने फूंक मारकर दीये को बुझा दिया।

दो माह बीत गए। शाम काफी हो चुकी थी। पीतांबर अपने घर पहुंचने की जल्दी में था। वह अंधेरे में ही निकल पड़ा। दमयंती लुढ़कती-सी कुएं की ओर बढ़ी और वहां नहाने लगी। ठीक उसी समय वहां पुजारी भी आ पहुंचा और व्यंग्य करता हुआ-सा बोला, "उस ब्राह्मण लड़के का संग पाने के बाद तो तुम नहाती नहीं थीं ! अब क्या हो गया है ?"

दमयंती ने कोई उत्तर नहीं दिया।

"जानता हूं, वह निचली जाति का है। यही बात है न ?"

एकाएक दमयंती दौड़ी। उसके कपड़े भीगे हुए थे। वह दौड़कर सहन के दूसरे कोने में जा पहुंची। फिर उसने दुहरी होकर उलटी करना शुरू कर दिया।

कृष्णकांत एक क्षण के लिए बिलकुल निष्क्रिय हो गया। उसकी कुछ समझ में नहीं आ रहा था। फिर वह लपककर उसके पास पहुंचा और धीरे से बोला, "यह पीतांबर का ही है न !"

दमयंती ने फिर भी कोई उत्तर नहीं दिया।

"वाह ! क्या बात है ! वह शख्स तो बच्चे के लिए तरस रहा है।"

इस पर भी दमयंती ने कोई प्रतिक्रिया व्यक्त नहीं की।

"अब मैं चलता हूं और उसे यह खबर दिए देता हूं। वह अब तुमसे खुल्लमखुल्ला शादी कर सकता है।"

फिर वह उसके निकट गया और फुसफुसाता हुआ बोला, "तुम्हारे यहां जो कुछ चलता रहता है, लोग उससे परेशान हैं। बीच-बीच में बात भी होती रही कि पंचायत बुलाई जाए। और सुनो ! एक और बात भी है। वह बहुत गंभीर है। वह तीन महीने का गर्भ जो तुमने बिजुली बांसों के पीछे दबाया था, उसे एक दिन एक लोमड़ ने खोदकर निकाल लिया और उसका एक भाग हड़प कर गया। जो हिस्सा बच गया था, उसे वह थोड़ा-सा चबाकर गोसाईं के पुजारी के अहाते में छोड़ गया। जानती हो न उसे ? वही जो गोसाईं के मुरलीधर को स्नान करवाता है। शुद्धीकरण में उसे बहुत परेशानी आई। दो गिलास पानी में घुला गोबर पीना पड़ा।"

दमयंती ने फिर वमन करना शुरू कर दिया था। उसके मुंह से ओंक-आंक की आवाज निकल रही थी और वह पूरी तरह खुला था।

पुजारी कहता गया, "इन सबके बावजूद पीतांबर तुमसे शादी करने को तैयार है। देखो, मैं इस जनेऊ पर हाथ रखकर कसम खाता हूं कि अगर इस बार भी तुमने अपने पाप से बचने के लिए इस अवसर को खो दिया तो तुम नरक की आग में जलोगी !"

पीतांबर को उसके जीवन की सबसे बढ़िया खबर सुनाकर कृष्णकांत बोला, "अब लगता है, तुम्हारा स्वप्न पूरा होने को है। अगर उसने इस बच्चे को नष्ट न किया तो विश्वास रखो वह तुमसे शादी कर लेगी।"

पीतांबर हमेशा की तरह अपने घर के सामने पेड़ के ठूंठ पर बैठा था और अपने उन अनमोल जूतों को भी पहने हुए था। जैसे ही कृष्णकांत के शब्द उसके कानों में पड़े, उसका समूचा शरीर खुशी से थरथराने लगा। क्या यह वाकई सच है ? क्या उस औरत के पेट में उसी का बच्चा है ? ठीक ही होगा। यह ब्राह्मण झूठ क्यों बोलेगा ? वाकई, उसी का बच्चा होगा।

वह उठकर खड़ा हो गया। वह व्यग्र हो रहा था। और उसी व्यग्रता में उसने अपने घर के सामने चक्कर लगाने शुरू कर दिए।

वह पुजारी के कदमों में झुक गया और उससे विनती करने लगा, "देखना

बापू ! मेरी उम्मीद पर पानी न फिरे। तुम मेरे बारे में सब कुछ जानते हो। मेरे पुरखे भारी योद्धा थे। उन्होंने उन बर्मी आक्रमणकारियों से युद्ध किया था। तुम यह भी जानते हो कि यदि यह वंशबेल टूट गई तो इसे आगे बढ़ाने वाला कोई नहीं होगा। केवल मैं ही जानता हूं कि मेरी आत्मा कैसे छटपटा रही है। अब मेरी जान इस मोहक जादूगरनी की मुट्ठी में है। अरे बापू, बताओ, क्या करूं मैं ?''

कृष्णकांत ने सांत्वना देते हुए अपना एक हाथ ऊपर उठाया और बोला, ''जैसे एक गिद्ध लाश की चौकसी करता है, उसी प्रकार मैं भी इस औरत की चौकसी करूंगा। इसके साथ ही मैं उस बुढ़िया को भी चेतावनी दे दूंगा कि वह पेट गिराने के लिए इसे कोई उलटी-सीधी जड़ी-बूटी न दे। लेकिन खेल सारा पैसे का है। मुझे ढेर सारी रकम की जरूरत पड़ेगी।''

इस बार पैसा लाने के लिए पीतांबर को घर के भीतर नहीं जाना पड़ा। सुबह ही उसने औरपुट के एक व्यापारी को अपने सात पेड़ों के कटहल बेचे थे और समूची रकम उसकी जेब में ही थी। उसने वह बाहर निकाली और कृष्णकांत की फैली हथेली पर रख दी। पुजारी ने उसे आशीष दी और वहां से चलता बना।

घर में दाखिल होते समय उसे फिर बीमार औरत की छेदती, पत्थर हुई आंखों का सामना करना पड़ा। उन आंखों में लांछन का भाव था, चाहे किसी एक के लिए ही सही, पर पीतांबर फिर पहले की तरह अक्खड़ और भावहीन बन गया था। बड़ी जोर से वह गुर्राते हुए बोला, ''अरी, बांझ कुतिया ! इस तरह मेरी तरफ क्यों देख रही है ?''

वह तो, दरअसल खुशी से बावरा हुआ जा रहा था। वह अब अपने घर के बाहर, अपने प्रिय स्थल पर बैठकर, दमयंती के पेट में पल रहे अपने बच्चे के बारे में स्वप्न लेता रहता। वह उसके विकास की विभिन्न अवस्थाओं की कल्पना करता–अब वह, यानी उसका बेटा, अपनी पूरी जवानी में है और वह उसे नदी के किनारे घुमाने ले गया है। फिर उसे लगता जैसे कि उसकी वंशबेल की सुनहरी डोरी उसे चमचमाते भविष्य की ओर खींचे लिए जा रही है। वह स्वप्न पर स्वप्न देखता–बाप और बेटा उस उज्ज्वल प्रकाश की ओर चले जा रहे हैं जहां धरती और आकाश, दूर क्षितिज में, एकस्थ हो जाते हैं।

नौकर की मदद से उसने अपने सोने के कमरे की पड़छत्ती पर पड़ी एक पुरानी सूंदकची को उतारा। संदूकची पर मिट्टी अटी पड़ी थी और उससे मकड़ी के जाले लिपट रहे थे। उसने उन्हें साफ किया और संदूकची को कमरे के दूसरे कोने में ले जाकर चुपके से खोला। उसमें कपड़े में लिपटा कुछ पड़ा था। दरअसल, वे उसके पिता की अस्थियों के अधजले टुकड़े थे। इसमें उसके पिता की सोने के मनकों की वह माला भी थी जो वह बराबर अपने गले में पहना करते थे। मरते समय पिता ने यह माला उसे दी थी और कहा था कि सोने के ये मनके सोने

की सीढ़ियों की तरह हैं जिन पर चढ़ते हुए वह अपने परिवार का झंडा फहराएगा।

पीतांबर उन अवशेषों को कुछ समय तक देखता रहा। फिर उसने उन्हें उसी कपड़े में सावधानी से लपेटा और संदूकची को वापस अपनी जगह पर रख दिया।

ऐसे ही कुछ समय बीत गया। पीतांबर का धैर्य अब खत्म होता जा रहा था। उसने सुन रखा था कि पांच महीने का गर्भ नष्ट नहीं किया जा सकता। इसलिए वह चाह रहा था कि यह नाजुक समय किसी तरह बीत ही जाए। इसे लेकर वह बेहद परेशान था। हर दिन उसे सामने खड़े पहाड़ की तरह दिख पड़ता। हर दिन अपने कानों में उसे उसकी तरफ आते उस ब्राह्मण विधवा के कदम सुनाई पड़ते। जैसे वह उससे कह रही होती—हवन की तैयारी करो। फिर वह कुछ उदास होकर कहती, 'मैं घर से अब बाहर नहीं निकल सकती। देखो, मेरा पेट कितना बढ़ गया है ! मैं, बस, सोचती ही रही हूं—हिंदू, मुसलमान, ब्राह्मण और कायस्थ। ये सब मिट्टी के बर्तन के टुकड़े भर तो हैं। इन शब्दों में अब कोई सार नहीं रहा। मुझे तो वह पुरुष चाहिए जिसके शरीर से, जब उसका मांस काटा जाए, तो असली खून निकले।'

पीतांबर के मन में उथल-पुथल मची हुई थी। दमयंती की छाया हर वक्त उसके सामने अपनी पूरी जीवतंता और सौंदर्य के साथ खड़ी रहती। उसे यहां तक लगता जैसे कि उसके चिकने, बांस की डालियों-से टखनों से, पाजेब के संगीतमय स्वर फूट रहे हैं।

तीन महीने बीत गए थे। पीतांबर अब लगभग हर रोज अपने काल्पनिक युवा बेटे के साथ धनेश्वरी के किनारे होता। उसका स्वप्न हर समय, रात और दिन, उसके साथ रहता।

अब अगस्त का महीना था। दोपहर को तूफान आया और साथ में बारिश भी ले आया। पीतांबर पिछवाड़े के धान कूटने वाले कमरे के बगल वाले कमरे का दरवाजा बंद करने को बढ़ा। पर उसकी पत्नी की आंख उस पर बराबर गड़ी हुई थी। वह सुन्न-सा हुआ खड़ा रहा। पत्नी की विस्फारित आंखें अंधेरे में चमकीले सर्पों की तरह दिख रही थीं। अचानक तूफान ने फिर तेजी दिखाई। सभी बत्तियां फड़फड़ाने लगीं और फिर बुझ गईं। चारों ओर घुप्प अंधेरा हो गया। तूफान की गर्जन के अलावा कुछ टूटने के स्वर भी सुनाई पड़े। यह क्या हो सकता है ? जरूर, सहन वाले पेड़ पर बिजली गिरि होगी और उसे दो फांका कर दिया होगा। यह कौन-सा पेड़ होगा ? वह अफरा-तफरी में बाहर की ओर दौड़ा। घर के नौकर पहले से ही बरामदे से नारियल के ढेर को हटाकर नारियलों को पिछले कमरे में पहुंचा रहे थे।

धीरे-धीरे तूफान की गर्जन और बिजली की चमकार तो कम हो गई, पर

बारिश पहले की तरह ही अपनी पूरी ताकत के साथ पड़ती रही। एकाएक पीतांबर के कानों में कोई स्वर सुनाई पड़ा। कोई उसे बुला रहा था। वह हाथ में लालटेन लेकर बाहर की ओर लपका। एक पुरुष आकृति उसकी आंखों के सामने उभरी। वह बिल्कुल निचुड़ रही थी। धोती उसके घुटनों के ऊपर थी। उसके हाथ में एक पुराना, फटा-सा छाता था। वह बिलकुल कंकाल के समान थी। वह पीतांबर के निकट आई। कौन हो सकता है ? पीतांबर ने लालटेन को ऊंचा किया और उसे गौर से देखा। यह तो कृष्णकांत है !

पीतांबर के मुंह से एकाएक निकला, "बापू, तुम ? क्या बात है ? ऐसे खराब मौसम में क्यों आए हो ?"

बड़ी मुश्किल से पुजारी बरामदे तक पहुंच पाया और वहां पहुंचते ही उसने छाता बंद कर दिया। उसके हाथ कांप रहे थे। वह बेहद घबराया-सा लग रहा था। बोला, "तुम्हारी पहली पत्नी अशुभ घड़ी में मरी थी। अब जो कुछ हुआ है, उसके पीछे यही कारण रहा होगा।"

"क्या ! क्या कहा ? क्या हुआ है ?"

"शास्त्रों में कहा गया है कि जब किसी व्यक्ति की ऐसी घड़ी में मृत्यु होती है तो सहन में घास का छोटे-से-छोटा तिनका भी जलकर राख हो जाता है। तुम्हारे लिए अब सब कुछ जलकर राख हो चुका है।"

पीतांबर भयभीत-सा चीख उठा, "हुआ क्या है ? ईश्वर के लिए मुझे जल्दी से बताओ।"

"क्या कहूं ? उसने उसे नष्ट कर दिया है। उसने उसे साफ करवा डाला है। वह किसी छोटी जाति वाले का बीज अपने भीतर पनपने देना नहीं चाहती थी। वह शांडिल्य गोत्र की ब्राह्मण है। हां रे, पीतांबर, उसने पेट गिरवा दिया है।"

पीतांबर के साथ धनेश्वरी के किनारे टहलनेवाले युवक का पांव एकाएक फिसला और वह नदी में जा गिरा...।

एक रोज आधी रात के वक्त दमयंती चौंककर उठी। उसके पिछवाड़े से कुछ आवाजें आ रही थीं, जैसे कि कोई जमीन खोद रहा हो। मारे डर और घबराहट के उसने अपनी बड़ी बेटी को जगाया। दोनों ने ध्यान लगाकर सुना। हां, घर के पिछवाड़े में बांसों के झुटमुट की दिशा से खोदने की आवाज साफ आ रही थी। यह वही स्थल था जहां कुछ रोज पहले दमयंती ने भ्रूण को दबाने के लिए गड्ढा खोदा था। उस रात दमयंती की बेटी अपने हाथ में मिट्टी का जलता दीया थामे हुई थी और दमयंती इधर-उधर डोलती, कुदाल से जमीन खोदती जा रही थी और फिर उसने कांपते हाथों से खोदी हुई मिट्टी बाहर निकाली थी। लेकिन मां और बेटी डरी भी बहुत थीं, क्योंकि लोमड़ियों के हू-हू करने की आवाजें बार-बार आ रही थीं।

ठुक ! ठुक ! ठुक !

उन्होंने बड़े संभलकर खिड़की के पल्ले खोले और बाहर देखा। एक आदमी लालटेन के मद्धिम प्रकाश में जमीन खोदने में लगा था, और लालटेन पास के एक बांस के झाड़ से लटक रही थी।

दमयंती का दिल जोर-जोर से धड़कने लगा। क्या पीतांबर है वहां ? हां, वही है। वह अपने में बिलकुल खोया हुआ जमीन खोदे जा रहा था। धीरे-धीरे खुदाई में और तेजी आ गई। उस महाजन के समूचे शरीर और चेहरे पर भयंकर आक्रमकता ठहरी हुई थी। वह खोदे जा रहा था और पागलों की तरह खोदी हुई मिट्टी अपनी पूरी ताकत से परे फेंके जा रहा था।

दमयंती का शरीर सर से पांव तक कांप गया। उसका दिल बड़ी तेजी से धड़क रहा था। क्या करे वह ? क्या वह शोर मचाए ? क्या वह चुप रहे ? गजब हो रहा था !

"ए महाजन ! अरे महाजन !"

कोई जवाब नहीं। बस, ठुक, ठुक, ठुक।

"क्यों खोदे जा रहे हो, महाजन ?"

पीतांबर ने मुंह ऊंचा करके देखा, पर जवाब नहीं दिया। बस, ठुक, ठुक ठुक, ठुक, ठुक !

दमयंती एकदम पागल हो उठी। वह बुरी तरह से चिल्लाई, "क्या मिलेगा तुझे वहां ? हां, मैंने उसे दबा दिया है। वह नर ही था। पर वह तो मांस का लोथड़ा भर था। कुछ खून और कुछ गंदगी। रुको। रुक जाओ।"

पीतांबर ने अपना चेहरा ऊपर उठाया। उसकी आंखें जल रही थीं। "मैं उस लोथड़े को अपने इन हाथों से छूना चाहता हूं। वह मेरी वंशावली की कड़ी था, मेरे ही मांस और लहू से बना था। मैं उसे एक बार जरूर छूकर देखूंगा।"

एक अविस्मरणीय यात्रा

प्रोफेसर मीराजकर और मैं काजीरंगा राष्ट्रीय उद्यान से लौट रहे थे। हम वहां घूमने गए थे। हम दोनों दिल्ली विश्वविद्यालय के भारतीय भाषा विभाग में काम करते हैं और असम के छात्रों द्वारा आयोजित एक सम्मेलन में शामिल होने के लिए असम गए थे। हमें अंधेरा होने से पहले गुवाहाटी पहुंचने की जल्दी थी। मीराजकर का कहना था कि उन्हें जंगली जानवरों से डर नहीं लगता, लेकिन आतंकवादियों से वह निश्चित रूप से भयभीत रहते हैं। उनके एक बहुत ही प्यारे दोस्त को पंजाब में इन्हीं आंतकवादियों ने खत्म कर दिया था। वे मुझसे बार-बार पूछ रहे थे, "क्या आप अपने इतने सुंदर प्रदेश में आतंकवाद पर काबू पाने में सफल रही हैं ?" मैं समझ नहीं पा रही थी कि उन्हें क्या जवाब दूं, क्योंकि रास्ते में हमें कई चैकपोस्टों पर रोका गया था और जांच करने के लिए हमारे चेहरों पर टार्च की रोशनी भी डाली गई थी।

मैं कार में बैठी खिड़की से बाहर देख रही थी, लेकिन मेरा मन वापस काजीरंगा के पर्यटक गृह के बरामदे में विचर रहा था जहां मैं बिजुली बांस के झुरमुटों में से बहती हवा की सरसराहट सुन रही थी। वह मूंगा रेशम का एहसास दे रही थी। मुझे चांद की चांदनी में वह विशालकाय उल्लू भी दिख रहा था जो एक चटयन पेड़ पर बैठा था और जिसका सर उसके धड़ से बड़ा दिख रहा था, जैसा कि एक नवजात शिशु का होता है। मीराजकर को आतंकवादियों की चिंता ही खाए जा रही थी। किसी ने उनसे कह दिया था कि पंजाब के बब्बर खालसा और जम्मू-कश्मीर के जे.के.एल.एफ. से जुड़े आतंकवादी असम के जंगलों में घुस आए हैं और यहां के स्थानीय गुटों से मिल गए हैं।

हम राष्ट्रीय मार्ग पर तेजी से आगे बढ़ रहे थे। मार्ग की दोनों तरफ, कुछ फासले पर पहाड़ियां थीं। धान के खेत अपने पूरे यौवन में थे। उनका सुनहलापन सोने को मात दे रहा था। कहीं-कहीं वे बड़े विनम्र भी दिखते थे, जैसे कि बौद्धों के गेरुवे से ढके हों या अंधेरे की बांहों में सिमटकर छिप जाना चाहते हों। रह-रहकर मीराजकर चौंक जाते, गोया कहीं गोली चल रही हो। फिर वह अपने सपनों में खो जाते, हालांकि उनकी उदास नजरें कार की खिड़की में से बाहर का दृश्य देख

रही होतीं, जहां खेत या जंगल थे और जंगलों में कपास, खैरा, सिसू, होलोंग पोमा, बोगी पोमा, बोकुल और शीशम के पेड़ थे। संध्या का समय होने के कारण शीशम रेशम की चिंदियों में लिपटा दिखता और सुबह ऐसा लगता जैसे सूरज उन्हें उघाड़ना चाह रहा हो या एक जादूगर की तरह चिंदियों को हरिण की खाल में परिवर्तित कर रहा हो।

ड्राइवर ने ही चुप्पी तोड़ी, "पिछले साल यह सड़क खून से सनी रही। हमेशा यहां दोनों तरफ से मशीन-गनें चलती थीं और हथगोले फेंके जाते थे। अब यहां शांति है। अब किसी के हाथ में बंदूक नहीं दिखती। सच कह रहा हूं।"

जैसे नरम-नरम गलीचे के नीचे सब कुछ दब गया था—खून के धब्बे, शस्त्र-अस्त्रों के ढेर, बारूद की गंध।

मीराजकर बोले, "बेशक हमें हथियार नजर नहीं आ रहे, लेकिन काजीरंगा में वन विभाग के अधिकारी अहमद ने हमें बताया नहीं था कि पशु-चोरों के पास विदेशी हथियार हैं जिनमें 470 अमरीकी कारबाइन भी शामिल हैं ? उन्होंने यह भी बताया था कि कुछ तस्कर मोरी डिफू में पकड़े गए थे और दो पशु-चोरों को गोली मार दी गई।"

मीराजकर ने शस्त्र-अस्त्रों का गहन अध्ययन किया है, और अब वह प्रथम विश्व युद्ध से संबंधित किस्से सुना रहे थे। उधर हमारा ड्राइवर रमाकांत भी सीमांत क्षेत्रों में पशु-चोरों के किस्से सुनाने लगा। रमाकांत पकी उम्र का आदमी था और गंजे हो रहे अपने सर को सूरज से बचाने के लिए नेपाली टोपी पहने हुए था। वह छोटे कद का था, पर मजबूत था। उसकी गर्दन उसकी कमीज के कालर में छिपी हुई थी। घाटी के अन्य बोडो लोगों की आंखों की तरह उसकी आंखें छोटी थीं। मूंछ बिल्कुल पतली। बढ़िया ड्राइवर था वह। ब्रेक या क्लच तो कभी-कभी ही इस्तेमाल करता था।

लेकिन मेरा मन कहीं और था। मैंने गोला-बारूद या आतंकवादियों पर बिलकुल ध्यान नहीं दिया। मैं कार की खिड़की के बाहर सांय सांय की आवाज के साथ पीछे छूटते पेड़ों को देख रही थी। मैं वेलाई के शानदार पेड़ों को देख रही थी जो काई से इस तरह ढके हुए थे जैसे लंबी पूंछ वाले बंदरों की टांगें बालों से ढकी रहती हैं। कई प्रकार के पेड़ थे जिनकी बेलें मूंगा रेशम को अपने में लपेटे थीं। कुछ पेड़ उन आलीशान खंडहरों की तरह दिख रहे थे जहां बड़े-बड़े मकड़ी के जाले झिलमिल करते फैले रहते हैं। चारों तरफ हरियाली थी, कहीं खूब घनी, जिससे मुझे नन्हीं पूथी मछली की याद हो आती। कहीं-कहीं पत्ते गोल थे जैसे कभी महारानी विक्टोरिया की छाप वाले चांदी के सिक्के हुआ करते थे। और बिरिना के पेड़ तो सफेद फूलों से सराबोर हुए दिखते थे, जैसे बादल धरती से अठखेलियां कर रहे हों।

मीराजकर अब भी खिड़की से बाहर देख रहे थे। यहां बंदूकों की धांय-धांय ? नहीं, असंभव। दिल्ली के मुकाबले तो यहां स्वर्ग है। दिल्ली में अब कौन रह सकता है ? अफगान और तुर्क शायरों ने जिसे सखी यमुना कहा, वह अब मात्र एक दुर्गंधयुक्त नाला बनकर रह गई है। सदर बाजार ! तोबा, तोबा ! इतनी भीड़, जैसे युद्ध का मैदान हो।

आहिस्ता-आहिस्ता, हमें पता भी न चला और सूरज की किरणें मंद पड़ती गईं, जैसे कोई अजगर अपनी केंचुली उतारकर अंधेरे में खो रहा हो।

हर्र... हर्र... कट... कट... की आवाज करती कार वहीं रास्ते में एक झोंपड़ी जैसी दुकान के सामने झटके के साथ रुकी। रमाकांत लपककर बाहर निकला और बोनट खोल दिया। फिर उसने हमें बताया कि रेडियेटर चू गया है और उसका सारा पानी खत्म हो गया है। अब कोई चारा नहीं था, सिवाय इसके कि गाड़ी को किसी मिस्त्री को दिखाया जाए।

मीराजकर और मैं भी गाड़ी से उतर आए। वहां उसी तरह की कुछ और दुकानें भी थीं जिनमें बहुत कम रोशनी थी। वहां कच्चा नारियल और चाय बिक रही थी। मीराजकर बोले, "अगर गाड़ी जंगल में खराब हो जाती तो गजब हो जाता। देखो, अभी से कितना अंधेरा हो गया है !"

मैंने सहमति में सर हिला दिया और रमाकांत वहीं दुकानों में मिस्त्री के बारे में पूछ-ताछ करने लगा।

एकाएक, थोड़ा परे, एक दुकान में से एक दुबली-पतली काया बाहर आई। वह एक पुरुष था जिसके हाथ में मिट्टी के तेल की लालटेन थी। वह ढीला कुर्ता तथा धोती पहने हुए था। धोती मुश्किल से उसके घुटनों तक ही पहुंच पा रही थी। मैं यह नहीं देख पाई कि उसने पांवों में कुछ पहन रखा है या नहीं। वह कार के निकट आकर रुक गया। उसके बाल लंबे थे और उन्हें उसने जूड़े की शक्ल में बांध रखा था। जूड़ा नीचे की ओर झूल रहा था। वह एक बूढ़ा व्यक्ति था जो काफी कमजोर दिख रहा था।

लालटेन थोड़ी ऊंची करते हुए वह बोला, "गाड़ी खराब हो गई है ? सात मील दूर एक दुकान है। रुकिए, मैं आपके लिए किसी कार को रोकता हूं। ड्राइवर उसमें बैठकर वहां से मिस्त्री को ला सकता है। आप मेरी दुकान मैं बैठिए और गरम-गरम चाय पीजिए। पान भी मिल जाएगा।"

वह सड़क के बीचोंबीच खड़ा था और अपनी लालटेन झुला रहा था। उसके बालों का जूड़ा उसके कंधों पर सरक आया था। मंद रोशनी में वह प्रेत-सा दिख रहा था।

मीराजकर और मैं उसकी दुकान में घुस गए। बांस के एक डंडे से एक और लालटेन लटक रही थी जिसकी चिमनी टूटी हुई थी और बेहद गंदी भी हो

रही थी। लकड़ी की एक बेंच के नीचे एक पुराना स्टोव पड़ा था और कुछ जंग खाए डिब्बे भी थे। कच्ची दीवार पर एक कैलेंडर लटक रहा था जिसमें एक श्वेतांगाना का चित्र था। श्वेतांगना सिगरेट पी रही थी।

हम बेंच पर बैठ गए। भीतर की कोठरी से एक महिला आई। वह बूढ़ी थी और अपने हाथ में एक और लालटेन लिए हुए थी। वह बोली, "सारा दिन ऐसे निकल गया जैसे हम समुद्र से मछलियां पकड़ रहे हों। एक भी व्यक्ति देखने में नहीं आया।"

"कोई ग्राहक नहीं आया ?" मैंने विस्मय से पूछा।

"सड़क के दोनों तरफ अब ढेर-सारी दुकानें हैं," वह बोली, "उन्हें ग्राहकों को अपनी ओर खींचना आता है। वहां गाना भी बजता है।" फिर वह मेरे और निकट हो आई और फुसफुसाने लगी, "वे सब कुछ बेचते हैं। हम भगत लोग हैं। उस तस्वीर को लेकर भी मेरा और मेरे पति का हमारे बच्चों से काफी झगड़ा हुआ।"

उसने अब एक केतली उठाई और चाय के लिए पानी लेने बाहर चली गई। उसकी लालटेन की रोशनी में हम अब उसका फटा ब्लाऊज देख सकते थे। उसके नीचे के परिधान सूती थे और पुरानी कढ़ी चद्दर पर पान की पीक के निशान थे। केतली में पानी के साथ लौटकर उसने स्टोब जलाने की कोशिश की। स्टोव में तेल शायद रुक रहा था। इसलिए कोठरी एक तीखी गंध से भर गई।

बुढ़िया अपने कांपते हाथों से चाय के लिए गिलासों को ठीक से जमा रही थी। मुझे अच्छा नहीं लगा। "अम्मा", मेरे मुंह से निकला, "और कोई नहीं है तुम्हारा हाथ बंटाने को ?"

"मेरी बहू, बड़े बेटे की बीवी, मेरा हाथ बंटाती थी। पिछले साल बाढ़ आई तो बेटा किसी बीमारी से चल बसा। हम उसकी दवा-दारू भी न कर सके। डाक्टर तो अब डाकू बन गए हैं। जब उसकी मौत हुई तो उसकी बीवी पेट से थी। अब उसके बेटा हुआ है। वह बहुत कमजोर है... अपने पांवों पर खड़ी भी नहीं हो सकती।"

"और कोई नहीं ?"

"मेरे दो बेटे और एक बेटी है। वे स्कूल में पढ़ने जाया करते थे। किसी वक्त। अब तो सब कुछ बदल गया है। बेटी एक फौजी के चक्कर में पड़ गई। वे लोग यहां आतंकवादियों को खत्म करने आए थे। यहां के लड़कों ने उसकी पिटाई कर दी। अब धीरे-धीरे वह ठीक हो रही है... क्या बताऊं, बेटी, पिछले सात सालों से यही सब चलता आ रहा है। नरक बन गई है यह जिंदगी। नदी का कोई भरोसा नहीं। वह हमारी सारी जमीन चट कर गई है। अब तो इतना भी चावल नहीं कि..."

वह बूढ़ा अब तक लौट आया था। वह अपने हाथ में उसी तरह लालटेन

लिए हुए था। शायद वह मिस्त्री लिवा लाने के लिए ड्राइवर को भेजने में सफल रहा था। जहां खड़ा था, वहीं उसे उसने अपनी पत्नी को पुकारा, "ओ निर्मली की मां, ग्राहकों को अपनी दुखभरी कहानियां सुना-सुनाकर परेशान न कर। वे थके हुए हैं। उन्हें चाय दे।"

बुढ़िया अपने आदमी को देखकर झट से उठ खड़ी हुई और फिर उसके निकट जाकर फुसफसाई, "मनोहर और कुछ और लोगों ने आज उसे रेलवे लाइन के पास देखा था।"

एक क्षण के लिए तो वह बूढ़ा जैसे कि बुत बन गया हो। फिर बोला, "उनकी बातों में मत आओ। पिछली बार भी तो यही कहा था कि उसे रेलवे लाइन के पास देखा है। ...इन्हें चाय दी ? ये काजीरंगा से लौट रहे हैं। काफी थके होंगे। बिस्कुट भी दो चाय के साथ।"

"बिस्कुट ? वो कहां से दूं ? सारा पैसा तो पिछले हफ्ते चीनी और चाय की पत्ती लाने में लग गया।"

मीराजकर और मैं एक साथ ही बोल उठे, "नहीं, नहीं, कोई जरूरत नहीं बिस्कुटों की। दूध के बिना भी चाय चलेगी।"

बुढ़िया चाय तो तैयार कर रही थी, पर उसके मुंह से कुछ अस्फुट भी निकल रहा था, "भगवान ही जानता है, मैं यह दुकान कैसे चलाती हूं। पिछले सात सालों में नदी हमारी सारी जमीन हड़प गई। वहां सड़क के किनारे बाढ़-राहत वालों ने अपने तंबू लगाए थे... बस, एक सौ रुपया देकर हमलोगों का मुंह बंद कर दिया।"

बूढ़ा चिल्लाया, "बुढ़िया, जबान को लगाम देगी कि नहीं ?" लेकिन बुढ़िया का बुदबुदाना बंद नहीं हुआ। वह कहती गई, "इस बुढ़ऊ को उनके पांव छूते शर्म आती है। सरकार ने राहत के लिए जो पैसा दिया था, उसे वे खुद ही खा गए। हाय, पिछले सात सालों में क्या कुछ नहीं हुआ हमारे साथ, और यह आदमी अपने दिमाग में पुराने फितूर पाले इधर-उधर फुदकता फिरता है। अगर परिवार में कोई बड़बरुआ (अहोम राज्य का मंत्री) हुआ भी, जिसकी छड़ी का सिरा सोने से मढ़ा रहता था और छाते का हैंडल चांदी का होता था या जो एक शानदार दीवान पर बैठता था, तो इससे क्या हुआ ? ...मैं बार-बार इसे कहती रहती हूं, लेकिन यह है कि किसी कर्मचारी से मिलता ही नहीं... और इसी वजह से हम पिछले सात सालों से यातना भुगत रहे हैं... कृपा करके सरकार को बताइए कि हमारी क्या हालत हो रही है... जब भी कभी..."

बुड्ढे ने गुस्से से उसकी ओर देखा। फिर हमें संबोधित करते हुए बोला, "आप इसका ख्याल न करें। जब भी यहां ग्राहक आते हैं, यह इसी तरह बड़बड़ाने लगती है। इसका बस चले तो यह टूरिस्ट लोगों को काजीरंगा के बजाय बाढ़ से बरबाद हुए लोगों से मिलवाने ले जाए। वे बिलकुल पशुओं की तरह रहते हैं।"

अब उसने उसकी ओर घूरकर देखा और आदेश देता हुआ बोला, "उठो, पहले इन्हें चाय दो। जल्दी। चाय में अदरख डालना न भूलना। अगर अदरख नहीं है तो तेजपात की एक-एक पत्ती डाल दो।"

ठीक उसी समय मेरी निगाह दीवार से लटकते दोतारा पर पड़ी। मैं तब तक उसे नहीं देख पाई थी, क्योंकि वह उस बेंच के पीछे था जिस पर हम बैठे थे। वहां, दीवार से सटी, और भी बहुत-सी चीजें थीं—बोरियां, कनस्तर और नारियल के खोल। उन्हें देखकर मुझे हैरानी हुई। दोतारे पर काफी नक्काशी की हुई थी। लगा, उसकी देखभाल ठीक ही होती है।

"इस दोतारे को कौन बजाता है, दादा ?"

बूढ़े व्यक्ति के चेहरे पर, यह प्रश्न सुनते ही, रौनक आ गई। इससे पहले मैं यह कल्पना भी नहीं कर सकती थी कि वह इस तरह मुस्करा सकता है। कहने लगा, "डिफलू नदी के तट पर जो लोग नामघर देखने आते थे, वे मेरे इस यंत्र से परिचित थे। लेकिन अफसोस कि नदी अपने तट पर बने कई नामघरों को निगल गई है। अरीमराह, होलापर, कोहारा, मिहिमुख... इन तमाम जगहों पर रहने वाले लोग मेरे दोतारा को जानते थे। और तो और, ब्रह्मपुत्र के पार बेहाली के लोग भी मेरे गीतों के प्रशंसक थे।"

बुढ़िया ने अब तक अदरख कूट लिया था। कुछ झुंझलाकर बोली, "यह बूढ़ा अब नक्काशीदार शीशों जड़ी पालकी की डींग मारेगा। बेटे को गए दो महीने हो रहे हैं। वह भूखा, बेहाल, रेल की पटरी के पास कहीं हमारा इंतजार करता होगा। पर यह बुढ़ऊ तो उसके बारे में सुनना ही नहीं चाहता।"

बूढ़े व्यक्ति ने इस पर घुड़की भरी, "बकवास बंद कर, बुढ़िया ! दो कप चाय बनाने में तुम्हें सालों लग गए।"

प्रो. मीराजकर एकाएक बोल पड़े, "मैं तुम्हारा दोतारा सुनूंगा।"

"क्यों नहीं ?" बूढ़ा तो जैसे पहले से ही तैयार था। "आपके मिस्त्री को आने में कुछ वक्त तो लगेगा ही। जो लोग यहां चाय पीने आते हैं, मेरे गीत जरूर सुनते हैं।"

"ग्राहकों की बात कर रहे हो ? पिछले कई दिनों से यहां क्या कोई ग्राहक आया है, कारें भले ही ढेरों गुजरीं ?" बुढ़िया का बड़बड़ाना जारी था। "मैं ग्राहकों को चाय देती हूं। तुम रेल की पटरी पर जाओ और उसे देखो। लालटेन साथ लेते जाओ। तुम्हारा क्या है, तुम तो एक बार गप्पें हांकने और गीत सुनाने बैठ गए तो बैठे ही रहोगे।"

"मैं यह कहानी पहले भी सुन चुका हूं। कुछ महीने पहले क्या इसी तरह की अफवाह नहीं उड़ी थी ?" बूढ़े ने उसके हाथों से चाय के गिलास लेते और उन्हें आदरपूर्वक हमें सौंपते हुए प्रतिकार किया। फिर बड़ी तसल्ली से बोला, "अपनी

चाय लीजिए। मैं अभी शुरू करता हूं।''

एकाएक एक युवती, लंगड़ाती हुई-सी, वहां आ पहुंची। वह बड़ी मुश्किल से, छड़ी के सहारे, चल पा रही थी। उसके बाल लंबे, रेशमी थे। उसे देखते ही बूढ़ा और बुढ़िया उस पर चिल्लाए, ''क्यों आई है अब यहां, कुतिया ?''

हम फौरन ताड़ गए कि यह वही लड़की है जिसका भारतीय सेना के एक सैनिक के साथ चक्कर चला था। ये सैनिक इस इलाके में आतंकवादियों का सफाया करने आए थे।

चाय वाकई बढ़िया थी। बूढ़े व्यक्ति ने अपना दोतारा उतारा और उसकी तान साधते हुए बोला, ''काजीरंगा में आपको शेर देखने को मिले ? लोगों का कहना है कि सन् 1966 में केवल दो ही शेर थे। अब साठ के करीब हैं। गैंडे पहले सिर्फ तीन सौ थे। अब एक हजार पांच सौ हो गए हैं। पांच सौ के करीब हाथी भी हैं।''

''हमें कुछ हाथी देखने को मिल गए थे,'' मैंने कहा। ''क्या वे कभी-कभार यहां भी आ जाते हैं ?''

''अब नहीं आते, क्योंकि गाड़ियां काफी आती-जाती रहती हैं। बाढ़ आने से पहले तो वे हमारे धान के खेतों में भी चले आते थे और हम सब किसान मिलकर उन्हें भगाने में जुट जाते थे। शेर अब भी आ जाते हैं। आपको पता है, कुछ ही रोज पहले क्या हुआ ? दिमुईगुड़िया महंत का हाथी सड़क किनारे के एक ताल के निकट एक पेड़ से बंधा हुआ था। वह बहुत ही शरीफ था। जब कभी उसे डिफलू में नहलाने के लिए ले जाया जाता, वह वहां लड़के-लड़कियों से खेलता रहता। वह उस दिन ताल के पास लेटा हुआ था कि शेर ने उस पर हमला बोल दिया और उसके पिछले हिस्से से गोश्त का बहुत बड़ा टुकड़ा खींच ले गया।''

''हे भगवान !'' हम मारे भय के चिल्ला उठे। ''फिर क्या हुआ ?''

''हाथी तो सर्वज्ञ प्राणी है न। आपको हमारे यहां की मोआमारिया क्रांति के बारे में पता ही होगा जब वैष्णवों ने अहोम राजाओं के खिलाफ युद्ध किया था! वह एक हाथी के कारण ही हुआ था।''

''हाथी ?''

''हां, एक दुबला-पतला, डगमगाता-सा हाथी। यह राजा लक्ष्मणसिंह के जमाने की बात है। राजा बूढ़ा था, लेकिन तभी सिंहासन पर बैठा था। अपने मंत्री कीर्तिनाथ बड़बरुआ से उसकी काफी पटती थी। इत्तफाक से अहोम राजाओं में लक्ष्मीनाथ और गौरीनाथ बहुत ही बदसूरत थे। पूरे अफीमची भी थे। इसलिए अपनी आंखें मुश्किल से ही खुली रख पाते थे। गौरीनाथ की आंख एक मछुआरिन पर थी। मछुआरिन डिफलू के किनारे ही रहती थी। वह अपनी पालकी में वहां जाता और घंटों वहां उसके घर के बाहर इंतजार करता रहता, जबकि वह...।''

"वह हाथी वाली बात का क्या हुआ ?" मैंने पूछा।

"कीर्तिनाथ बड़बरुआ की मोआमारिया के महंत से लगती थी। कानून यह कहता था कि महंतों को हर साल राज दरबार में हाथी भेंट करने चाहिए। एक बार इन महंतों ने बड़बरुआ को एक बीमार हाथी भेंट में दे दिया। हाथी लड़खड़ा रहा था। मंत्री की जैसे ही उस छीजे हुए बीमार पशु पर नजर पड़ी, वह बौखला उठा। उसने हाथी के साथ आए महंत के कान काट लिए...।"

बुढ़िया से यह सहन नहीं हुआ। वह बीच में ही बोल पड़ी, "कान काट लिए ? अरे बुड्ढे, भगवान के लिए अपनी लालटेन उठाओ और जा उसे देख ... कहीं वह बेचारा मिलिट्री की गोलियों से घायल न पड़ा हो !"

बूढ़े व्यक्ति ने अपनी बात जारी रखी, जैसे कि उसने बुढ़िया को सुना ही न हो, "अगहन के इस महीने में नौ हजार मोआमारिया सैनिकों ने कीर्तिनाथ को बंदी बना लिया। वह तब रंगपुर जा रहा था। यह सब उस हाथी के कारण ही तो हुआ, उस बीमार हाथी के कारण।"

हम वहां बैठे चाय सुड़कते रहे और बूढ़े व्यक्ति की बातें सुनते रहे। रमांकात थोड़ी देर के लिए आया। उसने अपनी चाय पी और चला गया। जाते-जाते कहता गया, "काम लंबा है। डेढ़ घंटा तो लगेगा ही। मिस्त्री रेडियेटर को अपने वर्कशाप पर ले गया है।"

बुढ़िया अब मेरे निकट आ गई थी। बोली, "आज बहुत कम ग्राहक आए हैं। बेटी, एक-एक कप चाय और ले लो। अभी मेरे पास चीनी और पत्ती है।"

हमने चाय के दो और प्यालों के लिए कह दिया। इस बीच वह बूढ़ा अपने दोतारे के तार कसता रहा। "मैं मुश्किल से ही दोतारे को बाढ़ से बचा पाया। अब इस इलाके में कोई ऐसा व्यक्ति नहीं है जो इस तरह का दोतारा बना सके।"

बुढ़िया ने फिर कहा, "मैं ग्राहकों का ख्याल रखूंगी। तुम लालटेन लो और रेलवे की पटरी पर उसे देखो। क्या पता...!"

बूढ़े व्यक्ति को अब उत्तर देना ही पड़ा, "मेरी आंखें अब काम नहीं करतीं और यह औरत चाहती है कि मैं उसे अंधेरे में ढूंढू। पिछले दिन की बात है। मैं उसे देखने गया था और गिर पड़ा था। मेरे घुटनों पर अब भी चोट है और वहां दर्द होता है। मुझे दिल की भी तकलीफ है... सुनो बेटी, हमारी हालत सदा तो ऐसी न थी। बाढ़ के कारण ही सब कुछ हुआ... हमारी मजबूरी थी कि हमें इस सड़क के किनारे शरण लेनी पड़ी और अब हम दिन-रात ग्राहकों का इंतजार करते हैं। हम भी कभी इज्जतदार लोग थे। हमारे दो खलिहान थे जो धान से भरे रहते थे। कोई भी मेहमान आता था तो उसकी सुगंधि वाले चावल और काओई मछली से मेहमाननवाजी होती थी। हम बड़बरुआ परिवार से हैं। इस परिवार को यह अधिकार था कि वह दंडस्वरूप अपराधियों के घुटने तोड़ दे। लेकिन मेरे पिता दयालु व्यक्ति

थे। अगर दिन का समय होता तो मैं आपको अपने घर ले चलता और आपको वह सब चीजें दिखाता जिनसे हमारी प्रतिष्ठा झलकती थी। एक खास तरह की टोपी है जो किसी तरह बची रही। छाता है, चांदी का एक बर्तन है, सज-धज वाला पलंग है और चांदी का सरौता है। लेकिन हमारे धान के खेत, जो मुझे जान से भी ज्यादा प्यारे थे और जो सोना और मोती उगलते थे, अब नहीं रहे।'

बुढ़िया गुस्से से तमतमा उठी। "पुरानी कब्रें क्यों खोद रहे हो ? मैं स्वयं वहां जाती हूं और उसे ढूंढ़ती हूं।"

"चुप रह, बेवकूफ ! कितनी बार हम सुन चुके हैं कि वह लौट आया है ? पर हुआ क्या ? वह कहां लौटा ? हम तो उसका चेहरा देखने को तरस गए हैं। अब ये दो भले लोग आए हैं। मुझे इनकी सेवा करने दो। इन्हें थोड़ा आराम भी मिलना चाहिए।"

"बूढ़े व्यक्ति ने अब एक गीत गाना शुरू कर दिया था। वह पद्मप्रिया वैष्णवी द्वारा रचित था :

"यह संसार किसी काम का नहीं
पानी के बुलबुलों की तरह है
जो कमल के पत्तों पर गिरते हैं
प्रारब्ध किसी का पीछा नहीं छोड़ता
वह सबको राख का ढेर बना देता है...
यह जीवन, यह जवानी,
सब सपने के समान हैं जो बीत जाएंगे।"

मुझे उसकी आंखों के नीचे आड़ी-तिरछी रेखाएं साफ दिख रही थीं। उसके कुछ दांत गायब थे। गाल उसके धंसे हुए थे जिससे उसकी नाक और लंबी दिख रही थी। वह अनवरत रूप से गाए जा रहा था। गीतों का कहीं अंत ही न था। पद्मप्रिया की रचनाओं के बाद उसने कुछ दूसरे वैष्णव संतों के गीत गाए। मुझे लगा जैसे कि मैं डिफलू के किनारे बैठी हूं और पानी से अठखेलियां करते चांद को देख रही हूं।

लगभग एक घंटे तक गाने का यह कार्यक्रम चलता रहा। बीच-बीच में उसकी पत्नी बड़बड़ा उठती। उसकी एक ही रट थी, "लोग खास बताने आए कि वह रेल की पटरी के पास है... उसे चाहे सेना के लोग गोलियों से छलनी कर दें, इस पर कोई असर नहीं होगा..."

एकाएक बूढ़े व्यक्ति ने गाना बंद कर दिया। मीराजकर ने जल्दी से अपने कोट की जेब से कुछ पैसे निकाले और उन्हें उसके सामने पड़ी सुपारी वाली थाली में रख दिया।

"अरे निर्मली की मां !" बूढ़े व्यक्ति ने थोड़े ज़ोर से कहा, "इसमें से चाय

के पैसे काट लो और बाकी इन्हें वापस कर दो।'' फिर मीराजकर की तरफ मुड़कर बोला, ''आपने इतने पैंसे क्यों रखे, हुजूर ? मेरे गीत तो संतों के गीतों की गूंज भर हैं। अगर उनके कोई दाम चुकाए तो मुझे तकलीफ होती है। कोई मेरी भावना नहीं समझता, कोई नहीं।''

बुढ़िया पैसों को घूरे जा रही थी। उसने उन्हें छुआ तक नहीं, न ही वह मुंह से कुछ बोली।

इतनी देर में हमें बाहर एक जबरदस्त धमाका सुनाई पड़ा। जैसे कि बम फटा हो। हमें लगा जैसे कि हम उठाकर जमीन पर पटक दिए गए हों। पास ही के एक पेड़ की आड़ में से कोई व्यक्ति प्रकट हुआ और फिर उस दुकान में हमारे सामने आ खड़ा हुआ। सब कुछ क्षणांश में हुआ था। उससे मेरा गला सूख गया।

वह एक जवान लड़का था। उसके गाल पर एक गहरा घाव था—आंख से लेकर होंठ तक। वहां शायद गोली लगी थी, या तेज चाकू ने अपना काम किया था। घाव से खून रिस रहा था। उसके होंठों के नीचे का मांस अलग हुआ दिखता था, जिससे लालटेन की कंपकंपाती रोशनी में उसके दांत साफ झलक रहे थे।

मैं उस बुढ़िया के निकट हो गई। उसका हाथ मैंने अपने हाथ में ले लिया और उसे कसकर थाम लिया। हम दोनों कांप रही थीं। लड़का काली जीन्स और खाकी जैकट पहने था। पर उसके हाथ में कुछ था। रिवाल्वर ? वहां रोशनी खास तो नहीं थी, फिर भी रिवाल्वर का मुंह दिख रहा था। बुढ़िया पागलों की तरह चिल्लाने लगी, ''ओ मेरे बेटे ! मैंने तो तुम्हारे बाप को सौ बार कहा कि जाओ उसे देखो, वह रेल की पटरी के पास होगा। आ बेटे, आ ! क्या हुआ तुझे ? इस तरह खून क्यों बह रहा है ?'' उसका शरीर अब बुरी तरह कांप रहा था और वह सिसक रही थी।

एकाएक लड़के की नजर उस लड़की पर पड़ी जो कोने में बैठी भय के मारे कांप रही थी। वह गोली की तरह उस पर टूटा। उसने उसे बालों से पकड़ लिया और उसके पेट पर मुक्के बरसाने लगा। ''मैं तेरे इस पेट का मलीदा बना दूंगा। इस पेट में उस फौजी के जिस हरामी पिल्ले को पाल रही हो, उसे भी खत्म कर दूंगा। ...अरे, गंदी कुतिया, एक भारतीय सिपाही से प्रेम रचाती हो !'' थू... थू...! और वह उसके पेट पर अब लातें बरसा रहा था।

''अरे बाप रे ! यह तो उसे मार ही डालेगा।'' बूढ़े दंपति ने गुस्से से अंधे हुए युवक को परे ठेलने की कोशिश की।

युवक ने अपनी मां-बाप की तरफ देखा तक नहीं। फिर उसकी नजर अपने बाप के सामने पड़े पैसों की ओर गई और वह उन पर एकाएक लपका।

बूढ़ा चिल्लाया, ''ये मेरे पैसे नहीं है, बेटे ! ये इन ग्राहकों के हैं। इन्हें लौटा दो।''

युवक ने बाप की बात पर कोई ध्यान नहीं दिया। वह जैसे कि अपने से कह रहा था, ''पोचर लोग एक अमरीकी कारबाइन बेच रहे हैं। पुरानी तो वह जरूर है, पर है मजबूत। इस पैसे से मैं...''

फिर हमें संबोधित करते हुए बोला, ''आप आसानी से कुछ और रकम दे सकते हैं तो लाइए, निकालिए। मेरे पास समय नहीं है।''

हम विमूढ़-से एक-दूसरे की ओर देखने लगे।

वह अंधड़ की तरह आया था और अंधड़ की तरह ही जाने को हुआ। जैसे काली, अंधियारी रात में बिजली चमकी हो।

बूढ़े के होंठों पर अब एक प्रकार की मुस्कराहट-सी दौड़ गई थी। अपने जीवन में मैंने पहले कभी ऐसी मुस्कराहट नहीं देखी थी।

मीराजकर और मैं अब गुवाहाटी की ओर बढ़ रहे थे। हममें से कोई कुछ न बोला। जैसे कि हम एक अंतहीन, अंधियारी सुरंग में से गुजर रहे हों।

मोहभंग

इतनी सुबह यहां कोई नहीं उठता था, वे लोग भी नहीं जो श्मशान घाट के इर्द-गिर्द बस गए थे।

तरादोई की झुग्गी के सामने, हिजल के पेड़ में कुछ बुलबुलें बराबर चहचहाए जा रही थीं। पीली चोंच वाले बगुलों का एक झुंड अभी-अभी उड़ा था और ब्रह्मपुत्र के पूर्व में क्षितिज की ओर बढ़ रहा था। श्मशान घाट से उठती, जलते शरीर की गंध चारों ओर फैल रही थी, और दूर के नींबू के फूलों की मीठी सुगंध से एकस्थ हो रही थी।

तरादोई जैसे ही अपनी झुग्गी से बाहर आई, उसने देखा कि श्मशान घाट का लकड़ी बेचने वाला हैबर फिर हिजल के पेड़ के नीचे खड़ा है। उसकी पतली-पतली टांगें उसकी काली हाफ-पैंट से झांक रही थीं, और उसके सफेद दांत चूसे हुए गन्ने के रेशों की तरह दिख रहे थे।

तरादोई एकाएक अपनी झुग्गी के भीतर चली गई और आप-ही-आप बड़बड़ाने लगी, "अब क्या बचा है इस बदन में जो तुम फिर चले आए हो ? मुझे अमन-चैन से क्यों नहीं रहने देते ?"

उसे हैबर के कुछ शब्द अब भी अच्छी तरह याद थे। वे हथौड़े की तरह उसके कानों पर पड़ रहे थे—"तुम्हारे उस शराबी को जेल से छूटकर आने में बहुत वक्त लगेगा। वह भी अगर छूटा तो। आखिर उसने एक नहीं, दो-दो लोगों को कुचल डाला था। अब साबित हो गया है कि वह पीकर गाड़ी चला रहा था। लेकिन मैं यहां हूं। तुम्हें चिंता करने की जरूरत नहीं। हर तरह से मदद करूंगा। बस, रात को अपनी झुग्गी का दरवाजा खुला रखना। तुम्हारे दोनों छोटे बच्चों को तो भूख से नहीं मरने दूंगा।"

तभी से इसी उम्मीद में कि तरादोई का दरवाजा उसे खुला मिलेगा, वह पौ फटने से पहले ही हिजल के पेड़ के नीचे आ खड़ा होता था, जहां पक्षी चहचहा रहे होते और उसके सर के ऊपर फूलों से रस पा रहे होते।

तरादोई अब एक बार फिर अपनी झुग्गी से बाहर आई और चारों ओर देखने लगी। हैबर कहीं भी दिख नहीं रहा था। दूसरे, यह शख्स उनलोगों में से नहीं

था जो आंख बचाकर उसके यहां पड़ा वह लकड़ी का बक्सा देखने की कोशिश में रहते थे। वह बक्सा उसे श्मशान घाट के कचरे में से मिला था।

तरादोई गौर से चारों ओर देखती रही। क्या अब भी कोई ताकझांक करने वाला वहां है ? किस तरह के लोग हैं ये जो भुखमरे कुत्तों की तरह एक-दूसरे को सूंघते फिरते हैं ? बेशर्म, हरामी ! उनका बस चले तो वे किसी के तन के कपड़े भी घसीट ले जाएं और उसे नंगा कर दें। अभी कल की ही तो बात है। चकरोद के जमींदार को मरे कितने दिन हुए हैं, और उधर हलधर चौकीदार की खूसट बीवी कैसे पसरकर जमींदार के उरियम लकड़ी वाले पलंग पर सोती है। और फिर वह लकड़ी चीरने वाले सुकूरा की बीवी ? जिस हुक्के को वह गुड़गुड़ाती रहती है, वह भी तो उसे श्मशान घाट से ही मिला था। कई लोगों ने तो मुर्दों की राख में से सोने की अंगूठियां भी ढूंढ़ निकाली हैं। उनकी खोज-खबर लेने कोई आया ? किसी को भी यह देखने की इच्छा नहीं थी कि हलधर की वह सींक हो रही बीवी जमींदार के पलंग पर कैसे सोती है ! श्मशान घाट के चारों ओर बसी झुग्गी-झोंपड़ियों में दिवंगत हो गए लोगों की चीजें यों ही ठुंसी पड़ी थीं। कुछ चीजों से तो वाकई अमीरी टपकती थी और वहां पड़ी हुई वे बेहूदा लगती थीं। फिर भी हर किसी की आंख उसके इसी काले बक्से पर टिकी हुई थी।

तरादोई झुग्गी में वापस आ गई। उसके दोनों बच्चे सो रहे थे। उनकी पसलियां कोई भी आसानी से गिन सकता था। उनके पाजामे उनके शरीर से ऐसे ढुलक रहे थे जैसे कसाई की दुकान में बकरे की खाल। लेकिन वहीं, उनके निकट, वही लकड़ी का बक्सा पड़ा था जिसे देख-देखकर तरादोई के भीतर शक्ति भरती रहती थी। वह काफी बड़ा था।

उसने बड़े प्यार से बक्से पर अपना हाथ फिराया। उस पर बड़ी कारीगरी से खुदे हुए बकुल के फूल असली लगते थे। उसने उन फूलों पर अपना गाल टिका दिया। फिर वह किसी तरह उस बक्से के भीतर घुस गई और वहीं लेट गई, पर उसने इस बात का ख्याल रखा कि उसका ढक्कन खुला रहे।

अद्‌भुत ! वाकई अद्‌भुत ! उसमें लेटकर उसे अभूतपूर्व आनंद मिला। वह कुछ देर तक उसमें ऐसे ही पड़ी रही। फेंकने वालों ने तो उसमें से मृत शरीर अलग करके उसे यों ही फेंक दिया था। जब उसने श्मशान घाट से उसे उठाया था तो उसे उसमें से खून से सने कुछ बर्फ के टुकड़े भी निकालने पड़े थे। इस बात को तो वह अब तक भूल भी चुकी थी। फिर जाने क्यों, वह रोने लगी।

कुछ देर के बाद पुलिस की जीप वहां से घों-घों करती निकल गई। आम तौर पर पुलिस की गाड़ी के अलावा वहां से और कोई गाड़ी नहीं निकलती थी। पुलिस यहां खास मकसद से आती थी। मसलन, यह जानने के लिए कि क्या गोली से मरे लोगों के बारे में मिले प्रमाण-पत्र ठीक-ठाक हैं ? क्या चौकीदार की

रिपोर्ट पर विश्वास किया जाए कि किसी ने सुपुर्दगी प्रमाण-पत्र प्राप्त किए बिना यहां आकर नाजायज बच्चे को जला दिया ? कुछ ऐसे ही मामले उसे यहां खींच लाते थे। दूसरे, सतगांव की वेश्याएं भी यहां आकर धंधा करती थीं, जो अच्छा ही रहता था।

लगता है, जितनी ऊंची लपटें जलते मुर्दों के शरीर से आती हैं, उससे बढ़कर इन वेश्याओं के शरीर से गरमी पैदा होती है। हां, कई बातें थीं जिनका पुलिस को ध्यान रखना पड़ता था। इसी से कई बार पुलिस की गाड़ियों का तांता लगा रहता था, और कई बार पुलिस तथा श्मशान घाट की समिति के सदस्यों के बीच कहासुनी भी हो जाती थी।

तरादोई पुलिस की एक भारी गाड़ी की आवाज सुनकर चौंक उठी। सिंदूर और फूल, जिनसे बालों को सजाया जाता है, बक्से के भीतर बिखरे पड़े थे। कितना विचित्र है यह ! कैसे इस बेजान बक्से से उसका अस्तित्व एकाकार हो गया था। उसे लगा, वह उसी पलंग पर उस भव्य व्यक्ति के साथ अपनी रात बिता रही है। इस बक्से पर उसके व्यक्तित्व के चिह्न थे—उसके बाल, तेल और सिंदूर। पिछली रात उसने फिर चीथड़ों के ढेर में से अपनी शादी वाला ब्लाऊज निकाला था और उसे पहना था। उसके परिधानों में से केवल यह ही ज्यों का त्यों बचा रहा। मिट्टी के तेल की ढिबरी की फड़फड़ाती रोशनी में उसने अपना अक्स आईने में देखते हुए अपने बालों को उसी संलग्नता से काढ़ा था जिससे वह उन्हें दस साल पहले काढ़ती थी। बाल काढ़ते हुए उसे अपने कंधों और गर्दन की हड्डियों के एहसास का सवाल ही नहीं उठता था, क्योंकि वे उसकी कोमल मांसलता के नीचे छिपी हुई थीं। अब लोगों की निगाह में वह मात्र हड्डियों का ढांचा थी और उन्हीं अनेक जिंदा कंकालों की तरह थी जो उस श्मशान घाट के सहारे पल रहे थे।

क्या किसी की गिद्ध दृष्टि उस पर लगी हुई है ?

लोग भी हद करते हैं। आजकल तो वे हर कहीं से झांकते दिखते हैं, चाहे मामूली-सा छिद्र ही क्यों न हो। उसके नन्हें बालक, चाहे अब वे आराम से सो रहे थे, बराबर यही शिकायत करते रहते थे कि लोग छिप-छिपकर उन्हें देखते हैं और उनकी जासूसी करते हैं। मानो वे कह रहे हों—'शर्म करो, शर्म करो, उसी बक्से में सो रही हो जिसमें मुर्दे को लाया गया था ! फेंक दो इसे।''

तरादोई बक्से में आराम से सिमटी-सी पड़ी रही। यह अनुभव अद्भुत था।

अचानक किसी ने दरवाजे पर जमकर ठोकर मारी। तरादोई हड़बड़ाकर उठ बैठी। वह कान साधकर सुनने लगी। उसके भाई सोमेश्वर की आवाज थी जो वहां गूंज रही थी। सोमेश्वर पुलिस में काम करता था।

''तरादोई ! तरादोई !''

जैसे ही तरादोई ने दरवाजा खोला, पुलिस की वर्दी में एक व्यक्ति धमधमाता

हुआ भीतर आ घुसा। वह काफी मजबूत दिखता था और उसकी मूंछें आबदार थीं। वह खूब बड़े-बड़े जूते पहने हुए था और उसके हाथ में एक तगड़ा डंडा था।

"मुझे इन दिनों वक्त मिला ही नहीं कि देखूं तुम्हारा क्या हाल है। आज मेरी ड्यूटी इधर लगी है। सतगांव की उस औरत ने तो यहां बाकायदा अपनी दुकान ही लगा ली है। लगता है, अब नेक कमाई की कोई कीमत रही ही नहीं। अभी कल की ही तो बात है जब बरुआ की मौत हुई थी और उसके दोनों बेटे उसे यहां लाए थे। उनमें से एक तो बाप का क्रियाकर्म करवाने में व्यस्त रहा और दूसरा सबकी आंखों में धूल झोंककर देखते-ही-देखते उस कंजरी के यहां जा पहुंचा। सच, बहुत खराब वक्त आ गया है।"

एकाएक उसका मुंह खुला-का-खुला रह गया। वह झट से दो-एक कदम पीछे हटा, जैसे कि उसने सांप देखा हो। उसकी आंख भी अब उसी विशाल, बढ़िया नक्काशी वाले लकड़ी के बक्से पर गड़ी थी। उसके निकट जाते हुए उसने उसे अपने डंडे से ठकठकाया, फिर उसकी परिक्रमा की, और आखिर उसके एक तरफ अपने घुटनों के बल होकर रुमाल से अपनी आंखें मलने लगा। यानी, वह व्यक्ति जो कुछ ही क्षण पहले अंधड़ की तरह उस झुग्गी में दाखिल हुआ था, अब एक हारे हुए, उदास सैनिक की तरह दिख रहा था। तरादोई की ओर देखते हुए वह टूटी हुई आवाज में बोला, "तुम्हारे यहां थोड़ा पीने का पानी है ? मुझे एक गिलास पानी दो। दोगी ?"

वह गटगट पानी पी गया और फिर सर झुकाए-झुकाए बोला, "सो, जो मैंने सुना था, वह सच ही था। छोटे कुंअर की लाश इसी बक्से में यहां तक आई थी। हवाई अड्डे से परिवार वालों के साथ मैं भी था। ठीक, यही वह बक्सा है। बिलकुल वही।"

फिर तरादोई की आंखों में आंखें डालकर बोला, "ऐसा मत सोचो कि मुझे याद नहीं कि तुम इनके यहां काम करती थीं। हर कोई जानता है कि जब छोटे कुंअर के पिता, ठाकुर, बीमार थे तो तुमने उनकी कितनी सेवा की थी। खून और मवाद से सने हुए उन तमाम कपड़ों को धोना। और छोटे कुंअर !" सोमेश्वर की आवाज अब भावातिरेक के कारण भारी हो गई थी। "वह तुम्हें कितना मानते थे ! क्या उस वक्त वह तुमसे शादी करने पर तुले हुए नहीं थे ? इस बात को लेकर ठाकुर के परिवार में कितना हंगामा हुआ था ! फिर ऊपरी असम में उनका आनन-फानन तबादला, और फिर वह दुर्घटना !"

तरादोई के मुंह से एकाएक निकला, "उनकी मौत कैसे हुई ?"

"जीप से। क्या शरीर था उनका ! खून-ही-खून से सने बर्फ के टुकड़ों को हटाकर मैंने ही तो उनके शरीर को चिता पर रखने में मदद की थी। अपने इन्हीं दो हाथों से। मेरे हाथों पर ताजा, एक जवान का खून था..."

तरादोई को बुत की तरह खड़ी देखकर वह अपना वाक्य पूरा न कर सका। वह विशाल, काला बक्सा, जिसका मुंह खुला था, एक रहस्यमयी कंदरा की तरह दिख रहा था, दोनों को एक-दूसरे से अलग और दूर करता हुआ।

एकाएक सोमेश्वर तनकर खड़ा हो गया और जोर-जोर से बोलने लगा। उसके हाथ-पांव अब नाटकीय ढंग से चलने लगे थे, "तरादोई, वे दिन चले गए जब साहब लोग मजदूरों की बेटियों से शादी करते थे। जेनकिन साहब की लाश जहां दफनाई गई थी, वहां अब बड़ी लंबी-लंबी घास उग आई है। जेनकिन ही थे जिन्होंने एक कामगार की बेटी से शादी की। बड़े ठाकुर के बेटे, छोटे कुंअर ने कसम खाई थी कि वे तुमसे शादी करेंगे। लेकिन क्या वे कर पाए ? क्या वे तुम्हें तुम्हारी इस मामूली झुग्गी से बाहर निकालने और तुम्हें अपने घर में जगह देने में कामयाब हो पाए ?"

लगा जैसे कि तरादोई के भीतर से एक गहरी आह निकली है जो उसकी समूची काया को हिला गई, "देखा नहीं, वह मुझसे शादी नहीं कर पाया, तो कुंवारा ही रहा। पूरे बारह साल बीत चुके हैं। शायद वह कभी शादी करता भी नहीं।"

वह भारी-भरकम सिपाही तरादोई की ओर गौर से देखने लगा। अपने मोटे डंडे से फर्श को टंकारते हुए उसने अपनी बहन को अपनी खरखराती आवाज में कुछ खरी-खोटी सुना दीं, "तुम अभी भी उतनी ही मूर्ख हो जितनी तुम उस समय थीं जब तुमने ठाकुर के बेटे को अपना सर्वस्व दे डाला था। मैं पुलिस में काम करता हूं। मैंने सब कुछ सुन रखा है। इसलिए पूरी तरह तैयार होकर आया हूं।"

तरादोई अपने भाई की ओर लाचारगी से देखती रही। उसके पास कीमती याद्दाश्त की जो थाती थी, क्या उसका भाई उसे उससे भी वंचित कर देना चाहता था ?

अब तक सोए हुए बच्चे जग गए थे। वे तीनों अब ऐसे गुड़ी-मुड़ी होकर बैठ गए जैसे कि वे श्मशान से उठे प्रेत हों।

सोमेश्वर ने अपनी जेब टटोलनी शुरू कर दी। बच्चों को लगा कि वह उनके लिए कुछ लाया है, जैसे कि उनकी मां के इंतजार में खड़ा रहने वाला हैबर लाता था। आखिर, वह उनका मामा था, हालांकि जबसे उनका बाप जेल गया था, वह एक बार भी उनका हालचाल पूछने नहीं आया था।

तीनों प्राणी सोमेश्वर की ओर एकटक देखते रहे। तरादोई को तो अपने दिल की धड़कन भी सुनाई दे रही थी।

सोमेश्वर ने अपनी जेब से चिट्ठियों का एक पुलिंदा निकाला और तरादोई के मुंह पर दे मारा। "ये रहे। रखो इन्हें संभालके। उसकी शादी के कार्ड हैं।" फिर बोला, "जिस तरह यह सिलसिला चल रहा था, मुझे तैयार होकर ही आना पड़ा। तुम्हारी खातिर छोटे कुंअर तमाम उम्र कुंआरे रहने वाले नहीं थे। उनकी शादी

पक्की हो चुकी थी। शादी के कार्ड भी छप चुके थे। पढ़ो उन्हें। जरा गौर से पढ़ो। दरअसल, वे शादी कर घर लौट रहे थे, तभी वह दुर्घटना घटी। पढ़ो उन्हें, और उनकी आत्मा के लिए प्रार्थना करो।''

जैसे ही सोमेश्वर झुग्गी से बाहर जाने को हुआ, उसकी नजर अपनी मां से चिपटे बच्चों पर पड़ी। वह कुछ सिक्के टटोलने लगा। पर उसका मन तो कहीं और था। वह कुछ बड़बड़ा भी रहा था। तरादोई ने सुना। वह कह रहा था, ''अगर मैं श्मशान पर आए लोगों के बीच अपना शरीर बेचने वाली उस औरत को पकड़ सकूं, या हैबर को ही रंगे हाथों पकड़ लूं, तो मेरा यहां आना सफल हो जाए। वह हरामी हैबर घुन-लगी लकड़ी को साल की लकड़ी कहकर बेच डालता है।''

अपनी मुट्ठी में कुछ सिक्के भरकर उसने उन्हें बच्चों की आतुर मुट्ठियों में पलट दिया और जिधर से आया था, उधर लौट गया। उधर उन भुक्खड़ बच्चों को जैसे ही यह एहसास हुआ कि उनके हाथों में कुछ पैसे हैं, वे तुरंत पास की दुकान की ओर लपके।

2

तरादोई शादी के कार्डों के ढेर के पास बुत बनी-सी खड़ी रही। फिर वह उन कार्डों को ऐसे टटोलने लगी जैसे कोई श्मशान की राख में से हड्डियां टटोलता है।

बेशक, ये किसी शादी के निमंत्रण कार्ड ही थे।

तरादोई कई दिनों तक अपनी झुग्गी से बाहर नहीं आई। उसके बच्चे भूख से बेहाल थे। इसलिए वे उन लोगों से भीख मांगने पर मजबूर हो गए जो अपने मृतकों का दाह-संस्कार करने वहां आते थे। किसी ने छोटे लड़के के सर के इर्द-गिर्द एक गमछा लपेट दिया। ऐसे गमछे क्रिया-कर्म करने वाले लोग ही इस्तेमाल करते हैं। फिर इन लड़कों ने श्मशान घाट से शराब की दो खाली बोतलें भी प्राप्त कर लीं, जिन्हें धोकर उन्होंने, भैंसे पर सवार यमराज की मूर्ति के निकट वाले कुएं के पानी से भर लिया, और फिर उस पानी को वे अपनी प्यास बुझाने के लिए गटागट पी गए। पड़ोसियों को पता था कि तरादोई का चूल्हा ठंडा पड़ा है।

और वह विशाल, काला बक्सा ! वह अपना मुंह खोले वहीं पड़ा था, नर्क-कुंड के समान।

उधर हैबर हिजल के पेड़ के नीचे अंतहीन प्रतीक्षा में खड़ा था।

एक सुबह, जब रात की उदासी आसमान से चिपटी हुई थी, तरादोई तथा उसके दोनों बच्चे उस लकड़ी के बक्से को श्मशान घाट की ओर खींचते हुए देखे गए। तरादोई ने बक्से को उसी स्थल पर छोड़ दिया जहां, कहा जाता है कि किसी

नाजायज बच्चे को जलाया गया था। फिर उसने उसे आग लगा दी। आग को देखकर हिजल के पेड़ पर विश्राम कर रही बुलबुलें जोर-जोर से आवाजें निकालने लगीं।

सूरज ब्रह्मपुत्र पर उग रहा था। बैंगनी और भूरे रंग के बादलों के गुच्छे उससे चिपके हुए थे जिससे वह उस वेश्या के मुचे और पीले पड़े चेहरे की तरह दिख रहा था जो यह सोच-सोचकर परेशान थी कि जाने उसे अब कैसे अनचाहे अजनबी के साथ लेटना पड़ेगा ! वे बादल उस चेहरे पर छा गई लाचारी और अदम्य शक्ति के मिले-जुले भाव को भी उजागर कर रहे थे।

जले हुए बक्से के कोयले और राख वहां पूरी तरह बिखरे हुए थे। सुबह, सूरज की रोशनी में, वे ताजा कटी बकरी की उस खाल की तरह दिख रहे थे जिसे जमीन पर सूखने के लिए फैला दिया गया हो।

तरादोई अपनी झुग्गी से बाहर आई। वह किसी प्रकार की कोई चादर ओढ़े हुए नहीं थी।

हैबर नाम का वह व्यक्ति जो हमेशा हिजल के पेड़ के नीचे खड़ा उसका इंतजार करता था, वह भी अब वहां नहीं था।

द्वारका

अगर थोड़ा लिहाज भी करें तो कह सकते हैं कि द्वारका एक सीधा-सादा इंसान था। गांव वाले तो उसे बुद्धू कहते थे। फिर भी उसे हर कोई जानता था।

एक दिन एक विनिर्माण कंपनी ने पास ही कहीं अपना विनिर्माण कार्य शुरू किया और द्वारका को वहां मजदूरी पर रख लिया गया। कंपनी के साहब का नाम गैरीफील्ड था। गैरीफील्ड को द्वारका पसंद आ गया। उसने उसे गोली चलाना तो सिखाया, साथ ही यह भी चाहने लगा कि द्वारका उसके साथ शिकार पर रहा करे। आखिर उसने उसे एक बंदूक भी दे दी, उसका लाइसेंस भी द्वारका के नाम से ही मिला हुआ था। बंदूक मिलने से द्वारका के जीवन में खासा परिवर्तन आ गया। बंदूक ने उसका महत्व तो बढ़ाया ही, उसका आकार भी बढ़ा दिया। वह अब हमेशा उसे अपने कंधे पर झंडे की तरह टिकाए इधर-उधर ऐंठता फिरता।

गैरीफील्ड एक अच्छा शिकारी था और शिकार का उसे शौक भी था। उसे उम्मीद थी कि अब चूंकि द्वारका के कब्जे में बंदूक आ गई है, वह जरूर एक-न-एक दिन खूंखार बाघ या जंगली सूअर, नहीं तो दो-एक छोटे-मोटे जानवर तो मारेगा ही। पर जब कभी गोली चलाने का मौका आता, द्वारका के हाथ-पांव फूल जाते और वह भोंडे ढंग से व्यवहार करने लगता। ज्योंही कोई जानवर उसके सामने पड़ता, उसकी सिट्टी-पिट्टी गुम हो जाती।

एक दिन गैरीफील्ड ने एक साही (जानवर) की ओर इशारा किया और उससे कहा कि वह गोली चलाए। द्वारका केवल हाथ-पांव पटकता रहा, इतने में जानवर यह जा, वह जा, भाग गया। गैरीफील्ड को तब लगा था कि जिस तरह द्वारका बंदूक पकड़ता है, वह कोई जानवर को तो क्या मारेगा, कोई-न-कोई आदमी जरूर मार लेगा। गैरीफील्ड ने कभी सपने में भी न सोचा होगा कि उसके अनुमान इतने सही निकलेंगे।

गांव के बूढ़े-बुजुर्गों ने द्वारका को जब बंदूक के साथ घूमते देखा और उन्हें उसकी आंख में चमक भी दिखाई दी। उन्होंने एक-दूसरे से बतियाते हुए कहा कि ऐसे सीधे-सादे आदमी के लिए यह अच्छा नहीं हुआ। द्वारका की हालत उन्हें दंडकारण्य

के उस ऋषि की तरह लगी जिसे इंद्र ने अपनी खड्ग संभालने के लिए दी थी, पर वह खड्ग पाकर उद्दंड और दुष्ट हो गया। उन्हें लगा, द्वारका गैरीफील्ड की बंदूक के जरिए हिंसा भड़का सकता है। बाकी लोग उसका तथा उसकी बंदूक का मजाक उड़ाते थे, पर कुछ समय बाद जब उन्होंने देखा कि उस पर इसका कोई असर नहीं पड़ता, तो उन्होंने उस पर ध्यान देना छोड़ दिया।

गैरीफील्ड काफी बूढ़ा था और कुछ समय से बीमार भी था। एक दिन वह कार्य-स्थल के नजदीक ही कंपनी के कैंप में चल बसा। द्वारका इस हादसे से बहुत उदास हो गया। वह अंतिम संस्कार की व्यवस्था में चेहरा लटकाए इधर-उधर आ-जा रहा था। पर गैरीफील्ड की मौत का दूसरे मातहतों पर उलटा असर पड़ा था। गैरीफील्ड अपने जीवन-काल में हमेशा चिड़चिड़ाया रहता था। वह कड़े अनुशासन में यकीन रखता था और जमकर काम लेता था। उसकी उपस्थिति में वे मातहत भीरु और भयभीत बिल्लियों की तरह व्यवहार करते, लेकिन उसकी मृत्यु के बाद वे गप्पें हांकते, आपस में मजाक करते और द्वारका की हंसी उड़ाते। एक छोटे इंजीनियर ने तो यहां तक कह डाला कि कलकत्ते की सभी वेश्याओं के कोठों को गैरीफील्ड ने पवित्र किया था। इंजीनियर की इस फबती पर सब बुरी तरह हंसे। उनकी कल्पना में इससे बढ़िया लतीफा और कोई नहीं हो सकता था। द्वारका वहीं पास ही काम कर रहा था। उसने उनकी हंसी भी सुनी और गैरीफील्ड के बारे में जो मिर्च-मसालेदार काल्पनिक कहानियां सुनाई गईं, उन्हें भी सुना। उसका मस्तिष्क एक ज्वालामुखी की तरह फट पड़ा। बेशक, उसका मालिक उसे लतियाने के साथ-साथ उसे उल्टी-सीधी भी सुनाता था, पर वह उससे प्रेम भी करता था और उसका सम्मान भी करता था।

द्वारका बुरी तरह झुंझला उठा। वह अपने आपसे ही बोला, 'आजकल जब अच्छे लोगों की मृत्यु होती है, तो उनकी अच्छाई भी उनके कफन के साथ दफना दी जाती है। पर पहले ऐसा नहीं था। भगवान राम जैसे महान व्यक्तियों ने भी शबरी और निषाद जैसे दलितों की अच्छाइयां पहचानी थीं।'

उसे अब पहले से भी ज्यादा बेरुखी हंसी सुनने को मिली। अतिथि गृह के भोजन कक्ष में बीयर की एक खाली बोतल के फर्श पर गिराकर टूटने की आवाज सुनाई पड़ी। वह एकाएक उस कक्ष में घुस पड़ा, वहां एकत्रित व्यक्तियों पर बरसते हुए बोला, "अरे गधो, अभी कल की ही तो बात है, तुम भीगी बिल्लियों की तरह उसके सामने व्यवहार करते थे, और अब जबकि वह इस दुनिया में नहीं है, तुम उसका नाम ले-लेकर उसकी खिल्ली उड़ा रहे हो ! तुम्हें खुद पर शर्म नहीं आती ? जब वह जिंदा था, तब तो तुम्हारी हिम्मत नहीं हुई कि उसका सामना करते। कायर... ! मूर्ख कहीं के !" फिर उनकी प्रतिक्रिया की परवाह किए बिना उसने शीशे के टुकड़े इकट्ठे करने शुरू कर दिए थे और फर्श को भी साफ कर

दिया। इस पर एक इंजीनियर ने उसकी कमीज पकड़ ली, फिर वह अपने को रोके रहा। "धत्त, यह भी कोई आदमी है ! इसके तो भावों का ही पता नहीं चलता।"

शाम हो गई थी। द्वारका अतिथि गृह के बाहर सीढ़ियों पर बैठा था। पास 'पोमा' वृक्ष पर एक पक्षी शाम की खामोशी को तोड़ता हुआ चहचहा उठा। द्वारका को अकेलापन महसूस हुआ। गैरीफील्ड से जुड़ी यादों ने उसे घेर लिया...

शाम का वक्त गैरीफील्ड के लिए पीने का वक्त होता था। द्वारका उसके पास ही बैठ जाता और उसे व्हिस्की पीते हुए देखता रहता। गैरीफील्ड उसे भी पीने के लिए कहता, "अरे, तुम क्यों नहीं पीते ? पीने से सही आदमी बन जाओगे।"

द्वारका विमूढ़-सा मुस्करा देता और फिर कहता, "नहीं साहब, मेरे धर्म में इसकी मनाही है। मेरे पुरखे पीना पाप समझते थे, और मैं उनकी इज्जत करता हूं।"

तब गैरीफील्ड अधीर होकर कह उठता, "ठीक है, मत पीओ। बस, चुपचाप बैठे रहो और ऐसे ही मेरा साथ देते रहो।"

द्वारका वहीं उसके पास बैठा रहता और कागज पर पेंसिल से असम के महान नायक, लचित, का चित्र बनाता रहता। वह लचित के कारनामों का भारी प्रशंसक था, पर वह यह नहीं जानता था कि वह कैसा दिखता होगा। दूसरे, वह जैसा चाहता था वैसा चित्र बना भी नहीं पाता था, पर कोशिश उसने अपार की थी।

उसे अपने दिवंगत मालिक की कई खूबियां याद थीं। एक बार एक ठेकेदार उसके मालिक के पास दया-दृष्टि की याचना के साथ आया। उसके संग उसकी रिश्ते की दो सुंदर बहनें थीं। उनकी पोशाक काफी भड़कीली थी। वह शरीर को ढांपने की बजाय उसे और नंगा करती थी। पर गैरीफील्ड टस से मस नहीं हुआ। चाहता तो उनमें से एक को आसानी से अपने बुढ़ापे के लिए रख लेता। ...द्वारका का ऐसा ही सोचना था।

भोलूकाडूबा में काम पूरा हो जाने के कारण कंपनी का शिविर ऊपरी असम चला गया था। द्वारका चाहता तो वह वहां भी जा सकता था, लेकिन बिना गैरीफील्ड के कंपनी में काम करना उसे सुहा नहीं रहा था। वह अपने भाई के लिए अब बोझ बन गया और 'चवक' के पेड़ की छाया में बैठकर अपना समय काटने लगा। उस समय उसकी बंदूक उसके पास ही रहती। जो लोग उसके पास से गुजरते, वे उसके निकम्मेपन पर छींटाकशी करते, पर उसे उसकी कोई परवाह न थी।

द्वारका एक बुजुर्ग दीवान को जानता था। उसके पुरखे अहोम राजाओं के यहां बड़े-बड़े ओहदों पर रहे थे। उसने दीवान के घर अकसर आना-जाना शुरू कर दिया। गांव वाले इसे लेकर भद्दे मजाक करते। कारण यह था कि दीवान की एक सुंदर बेटी थी और गांव के युवक उस पर आंख रखते थे। बूढ़े दीवान को अपने परिवार की शोहरत का एहसास था। वह इस पर गर्व भी करता था। पर

पिता के नाते वह अनुशासन का कठोरता से पालन करता था। उसकी बेटी सबसे अलग-थलग, रहस्यमय ढंग से, अपने कमरे में बंद रहती। वह तभी दिखाई देती जब वह नदी से पानी लेने जाती। उसे देखकर द्वारका एक बार चौंकता जरूर था। उसे ऐसे लगता जैसे कि सूरज की रोशनी का सैलाब आ गया है और वह उसमें डूबने-उतराने लगा है।

धीरे-धीरे द्वारका चिड़चिड़ा और उद्दंड होता गया। उधर गांव वालों ने यह बात उड़ा दी कि द्वारका के दिमाग में हर वक्त बंदूक घुसी रहती है। एक दिन अचानक दीवान उसके पास आया और बोला, "मेरे साथ बहुत बुरा हुआ है, द्वारका, मेरे दोस्त ! क्यों भगवान ने मुझे इस विपदा में डाल दिया ? तुम्हें मेरी मदद करनी होगी, द्वारका ! तुम मेरे नाम पर बट्टा लगने नहीं दोगे। ...तुम मेरी बेटी को तो जानते ही हो न ?"

द्वारका एक क्षण के लिए तो चुप रहा, जैसे उसने उसकी सुंदर बेटी को कभी देखा ही न हो। फिर वह एकाएक बोला, "हां, हां, कहे जाइए। पर मुझे थोड़े-से शब्दों में ही बताइए कि मुझे करना क्या होगा।"

दीवान की आंखें फटी-फटी थीं। जैसे वह कहीं और देख रहा हो। अपनी बात जारी रखते हुए बोला, 'मैंने अभी-अभी जाना है कि मेरी बेटी एक निचली जाति के बदमाश के चुंगल में फंस गई है। उसने किसी तरह उसे फांस लिया है। वे जंगल के एक घने हिस्से में छिपकर मिलते हैं। मैं तुम्हें वह जगह दिखा दूंगा। मैं चाहता हूं कि तुम एक बार उस कमीने को अच्छा सबक सिखाओ।"

यह कहते हुए दीवान के चेहरे पर घृणा की काली और भयावनी छाया घिर आई ! फिर उसने अपनी कार्य-योजना का विस्तार किया, "अगली बार जब वे मिलें तो मैं चाहूंगा कि तुम वहां जाओ और अपनी बंदूक उस भडुवे की दिशा में दाग दो। इससे भयभीत होकर वह सही रास्ते पर आ जाएगा। तुम जंगल के उस भाग को जानते हो न ? वह काजीरंगा और मनख शिकारगाह से भी ज्यादा खतरनाक है। किसी को तुम्हारे बारे में पता भी नहीं चलेगा। बाद में मैं सब देख लूंगा।"

द्वारका को जैसे भीतर-ही-भीतर कुछ संतोष मिला हो। वह अपने भयावने रूप में मुस्कान बनकर उसके चेहरे पर झलक आया। उसने अपने दोनों हाथ आपस में रगड़े। जब से यह बंदूक उसके हाथ लगी थी, उसे कभी भी किसी को मारने का सुख नहीं मिला था। और अब देखो, यह मौका खुद ही उसके हाथ लग गया है, बिना किसी प्रयास के, अद्भुत ढंग से।

जब दीवान ने द्वारका के चेहरे का भाव देखा, तो उसे कुछ बेचैनी का एहसास हुआ। उसने झट से कहा, "सुनो, मैं यह नहीं चाहता कि तुम उस आदमी की जान ले लो। उसे थोड़ा जख्मी कर दो। उससे काफी हद तक हमारा काम हो जाएगा।"

द्वारका ने कोई उत्तर नहीं दिया। वह केवल अपने आपमें मुस्कराता रहा।

कुछ दिन बाद की घटना है। द्वारका अपने बिस्तर पर बैठा था। बाहर जमकर बारिश हो रही थी। असम में ऐसी बारिश होती ही रहती है। उसे बारिश की उस ध्वनि से बड़ा सुख मिल रहा था। उधर लबालब भरी नदी की दबी-दबी गर्जना भी उसे उतना ही सुख दे रही थी। वह इस मौसम से आनंदित था—जैसे वह चारों ओर की गरमी से बचकर ठंडे नखलिस्तान में बैठा हो। वह बड़ा मस्त था। ऐसी मस्ती उसे इन दिनों कम ही नसीब हुई थी। उसे लगा, यदि ऐसा ही समां बना रहे तो वह आत्मज्ञान की अवस्था में पहुंच सकता है। वे लोग जिन्होंने जीवन में कुछ मूल्यवान खो दिया है, वे कातर होकर रो सकते हैं और अपना हिसाब चुकता कर सकते हैं। वैसे रोना भी तो एक प्रकार का आशीर्वाद है !

जिस समय उसके मन में ये विचार आ रहे थे, वह अपने पास बिस्तर पर रखी बंदूक को बराबर सहलाए जा रहा था। बाहर तूफान ने एकाएक रौद्र रूप धारण कर लिया था। ठीक उसी समय बाहर का दरवाजा भड़भड़ाकर खुला, और एक युवती हवा और बारिश के झोंके के साथ भीतर दाखिल हुई। उसकी गीली साड़ी उसके यौवनपूर्ण बदन से चिपकी हुई थी। वह आई तो उसके साथ-साथ उस अकेले कमरे में निचुड़े गन्ने की सौंधी गंध भी चली आई। वह दीवान की बेटी ही थी।

द्वारका सन्न हुआ उसे चुपचाप देखता रहा।

उसने अपनी पूरी ताकत लगाकर बोलना शुरू किया, हालांकि उसकी सांस उखड़ी हुई थी और वह कांप भी रही थी, "मेरे पिताजी आज बाहर गए हुए हैं। इसीलिए मैं इस भयंकर तूफान में यहां चली आई हूं। उस दिन मेरे पिताजी आप से जो बात कह रहे थे, मैंने उसका एक-एक शब्द सुन लिया था। यदि आप मेरे प्रेमी की जान ले भी लेंगे, तो उससे कुछ मिलने वाला नहीं। यह मैं आपको अभी बताए देती हूं। इसलिए खबरदार ! मैं आपसे जबरदस्त बदला लेने पर मजबूर हो जाऊंगी !"

जिस आवेग और रोष से उसके मुंह से ये शब्द निकले थे, द्वारका उन्हें सुनकर जड़वत् हो गया। उत्तर में उसके मुंह से एक शब्द भी नहीं निकला।

एकाएक युवती की आंखें आंसुओं से भर आईं और उसने मिन्नत भरे स्वर में उस पर अपनी उंगली तानते हुए कहा, "क्या आपको कभी प्रेम का अनुभव हुआ है ?"

द्वारका को लगा जैसे कि वह अभिभूत हो गया हो। वह बोला, "बताइए, आप मुझसे क्या चाहती हैं ? आप जो कहेंगी, मैं करूंगा। पर एक शर्त है। मुझे भी एक बार उस अनुभव का अवसर देकर कृतज्ञ करेंगी।"

युवती हक्की-बक्की रह गई। फिर बोली, "क्या मतलब है आपका ? मैं आपकी बात समझ नहीं पाई।"

लेकिन फिर उसने उसके चेहरे का भाव भांप लिया और जान गई कि वह एक जहरीले सांप के समक्ष खड़ी है। उसका दिल बुरी तरह धड़कने लगा। उसे अपने को इस दुष्ट से बचाना ही होगा। उसने झट से अपनी भीगी साड़ी को समेटा और उस तूफानी रात में बाहर भाग गई।

अगली सुबह द्वारका हमेशा की तरह अपनी बंदूक को अपने कंधे पर ताने 'साल' के जंगल की ओर चल पड़ा। वह उससे परिचित था। बारिश हालांकि थम चुकी थी, फिर भी 'साल' के चौड़े पत्तों से पानी बराबर टपके जा रहा था। जंगल के कुछ हिस्से में गीली भूमि से भाप निकलने के कारण धुंध छाई हुई थी। वातावरण में भारीपन था। वह विशृंखलित भी हो रहा था। वह बिना खाना खाए वहां ऐसे ही निरुद्देश्य भटकता रहा और जंगल में शाम के सायों को फैलते देखता रहा।

अचानक उसे उस झुटपुटे में दो चमचमाती आंखें, अंगारों की तरह दहकती, दिखाई दीं। वह फौरन पहचान गया कि यह अशुभ 'हुडु' पक्षी है। उसने सहज ही अपनी बंदूक उठाई और उन चमचमाती आंखों के बीच झट से गोली दाग दी, जिससे पक्षी फड़फड़ाता हुआ नीचे आ गिरा। उसके प्राण निकल चुके थे। द्वारका के शरीर में सनसनाहट दौड़ गई। आखिर, उसने कर ही डाला एक शिकार ! उसमें जैसे नई चेतना समा गई। वह और पक्षियों को ढूंढ़ता हुआ इधर-उधर दौड़ने लगा, पर उसके हाथ कुछ भी न लगा।

अगले दिन भी वह जंगल में तब तक निरुद्देश्य घूमता रहा जब तक कि सूरज डूब नहीं गया। शाम के झुटपुटे में एक अजब तरह की अचेतन प्रेरणा उसे जंगल के उस हिस्से में ले गई जहां दीवान ने उसे जाने को कहा था। यहां घनी 'काचीडरिया' घास उगी थी जहां 'देओहन' (एक तरह का तीतर) आराम करना पसंद करता है। द्वारका आहिस्ता-आहिस्ता उस घनी घास के एक खित्ते की ओर बढ़ा, और फिर भूखे बाघ की तरह झुककर बैठ गया। तुरंत ही वहां एक बीस-वर्षीय युवक आता दिखाई दिया। द्वारका ताड़ गया कि दीवान की बेटी का छिपा प्रेमी यही है। वह देर तक उस पर टकटकी लगाए रहा, और सोचता रहा—यही तो है न वह, मेरे सामने खड़ा... मेरे जीवन के बीस वर्ष, जिन्हें मैंने यों ही बरबाद कर दिया और जिन्हें अब मैं लौटा नहीं सकता। मेरी खोई हुई जवानी यही है, यहीं खड़ी हुई है।

उसे अपने कंधे में, जहां उसने बंदूक लटका रखी थी, हल्का-हल्का दर्द महसूस हुआ। उसे अपनी ठुड्डी का मांस लटकता हुआ लगा। वह एकाएक अपने को बुड्ढा महसूस करने लगा। उसके समूचे शरीर में ठंडी जकड़न व्याप्त गई। उस सुंदर युवती की आंखों का त्रास और घृणा उस पर फिर हावी हो गई। द्वारका जैसे यंत्र-चालित हो रहा, जैसे उसके भीतर कोई मजबूरी हो, उसने अपनी बंदूक से निशाना साधा और युवक के शरीर में दो गोलियां उतार दीं। फिर उसने देखा कि

युवक कटे पेड़ की तरह गिरा है। उसे लगा कि उसने उसे मार डाला है।

द्वारका पकड़ा गया और उसे पंद्रह वर्ष की कड़ी मशक्कत के साथ कैद हुई। वह कारागार में ही था कि उसके भाई की शादी हो गई। उसके सगे भाई ने उसकी रत्तीभर चिंता नहीं की। पर उसकी पत्नी सहृदय थी और वह अपनी तरह की समझ भी रखती थी। वह अकसर द्वारका से कारागार में मिलने आने लगी और उसके एवं उसके अकेलेपन के प्रति संवेदना दिखाने लगी। वह उसके लिए स्वादिष्ट पकवान बनाकर लाती और उससे बड़ी स्नेहमयता से बात करती। उसके शब्दों और हावभाव ने द्वारका में फिर से जीवन की चेतना लौटा दी थी, वह महसूस करने लगा था कि कैदखाने की सलाखें उसे जीवन-भर बांधें नहीं रखेंगी। उसे दीवान की बेटी की भी याद आती। निचुड़े गन्ने की सूक्ष्म गंध उसे फिर लालायित करने लगी।

वह अक्सर अपने भाई की पत्नी के बारे में सोचता। उसे उसके प्रति क्या आकर्षित करता है ? उसके पास वह क्या है जो वह उसे दे ? न उसके पास जमीन है, न घर है, न ही कोई ढोर (गाय) है। मरने के बाद वह उसके लिए क्या छोड़कर जाएगा ? फिर वह बार-बार उससे मिलने क्यों आती है ? शायद प्रगाढ़ प्रेम ही इस अद्भुत स्थिति के पीछे है !

उसके भीतर खुशी की लहर-सी दौड़ गई। पर साथ-साथ इसमें पीड़ा भी थी। उसका हाथ अपनी बंदूक को टटोलता आगे बढ़ा। वह उसकी नली को सहलाना चाहता था। पर वहां तो कुछ नहीं था। महज खालीपन था। वह समझ गया कि पिंजरे में बंद पक्षी की तरह वह जेल के सीखचों के पीछे है। अपनी इस अवस्था पर उसे बहुत दुख हुआ।

कुछ सालों के बाद गांधीजी की जन्म शताब्दी के उपलक्ष्य में आम माफी घोषित कर दी गई और उसके तहत द्वारका भी मुक्त हो गया। मुक्त होने के बाद वह सीधा अपने गांव गया और अपने भाई की जमीन पर बनी एक पुरानी, खस्ताहाल झोंपड़ी में रहना शुरू कर दिया। उसकी वफादार बंदूक फिर उसके कंधे पर आ गई और वह उसके साथ गांव-गांव घूमता हुआ फिर देखा जाने लगा। वैसे बंदूक वापस लेना भी आसान नहीं था। उसके लिए उसे काफी तरद्दुद करना पड़ा। गांव वाले अब उसकी बिलकुल परवाह नहीं करते थे। और तो और, अगर वह उन्हें इत्तफाक से सड़क पर चलता मिल जाता, तो वे उसे अपशकुन मानते।

बूढ़ा दीवान अपनी बेटी की एक अच्छे घराने में एक अमीर आदमी के साथ शादी कर देने के बाद चल बसा था। एक लंबे समय के बाद वह युवती एक दिन गांव में फिर दिख गई। वह अपने पहले बच्चे के प्रसव के लिए अपनी मां के घर आई थी। द्वारका को उसकी झलक मिल गई और उसे देखते ही पुरानी स्मृतियों ने उसे आ दबोचा। वह उससे एक बार फिर मिलना चाहता था, और

अपनी यह इच्छा वह दबा नहीं पा रहा था। वह उससे केवल पूछना चाहता था कि उसकी पिछली हरकत के लिए उसने उसे क्षमा कर दिया या नहीं ? पर मुश्किल यह थी कि अब उसने पानी लाने नदी पर जाना बंद कर दिया था।

लेकिन एक बार उसे मौका मिल ही गया। वह अपनी सहेलियों के साथ अपने घर से बाहर आ रही थी। उसने उसे बड़े करीब से देखा। वे हंसती, गप्पें हांकती चली जा रही थीं। द्वारका उसे देखकर एकाएक उछल पड़ा और युवतियों के उस समूह का पीछा करने लगा। जब युवतियों की नजर उस पर पड़ी, तो वे ठिठक गईं और ऐसे परे हटीं, जैसे कि वह कोढ़ी हो। इससे वह दीवान की बेटी के साथ अकेला रह गया, और दीवान की बेटी भी वैसे-की-वैसी डटी रही।

द्वारका के मुंह से एकाएक कुछ शब्द निकले जो प्रश्न की शक्ल में थे, "कृपया मुझे बताइए—आपने मुझे क्षमा कर दिया ?"

युवती की आंखों में द्वेषपूर्ण भाव था। वह हंसी और बोली, "ज़ो तुमने किया, वह मेरे लिए आखिर अच्छा ही हुआ।" फिर अपने उभरे पेट की ओर देखते हुए बोली, "मेरे बच्चे के मजे रहेंगे। उसके पास पैसा-ही-पैसा होगा। खूब पैसा होगा।"

द्वारका ने अपनी बंदूक उसकी ओर बढ़ाते हुए बड़ी बेताबी से पूछा, "तो आप नहीं सोचतीं कि यह बंदूक मेरे लिए बदकिस्मत रही ?"

युवती ने भी अपना हाथ आगे बढ़ाया और अपनी कोमल उंगलियों से बंदूक को छूते हुए उसकी नली को प्यार से सहलाया। फिर उसने एकाएक अपना हाथ पीछे खींच लिया जैसे कि बंदूक से उसे बिजली का झटका लगा हो। वह देखते-ही-देखते दूसरी मनःस्थिति में आ गई, और उस पर फूत्कार करने लगी, "अरे कमीने हरामी ! तू जेल में चूहे की तरह क्यों नहीं सड़ता रहा और क्यों नहीं वहीं गर्क हो गया ?"

अब वह जोर-जोर से आंसू बहाने लगी थी। फिर वह एकाएक मुड़ी और अपनी सहेलियों से जा मिली।

...द्वारका पुराने पेड़ के नीचे अपने हमेशा के स्थल पर बैठा था। वह वहां तमाम दिन बैठा रहा और शून्य में देखता रहा। जब वह खाना खाने भी नहीं आया, तो उसके भाई की पत्नी चिंतातुर-सी उसकी तलाश में चली आई। जैसे ही उसे उसका चेहरा दिखाई दिया, उसने अपनी छाती पर अपना हाथ रख लिया। उसका दिल बुरी तरह धड़क रहा था। वह भय और पीड़ा से भरा हुआ था। वह पंजों के बल चलती हुई उस तक पहुंची और बड़ी कोमलता से बोली, "तो तुम वहां गए थे और उससे मिले थे ? है न ?"

द्वारका ने अपना सर हिलाया और बड़ी धीमी आवाज में बोला, "हां।"

वह कुछ देर चुप रही और फिर अपनी बात जारी रखते हुए बोली, "एक

क्षण के लिए सोचो। क्या मैंने ही तुम्हें उससे एक बार फिर मिल लेने के लिए प्रेरित नहीं किया था ?''

शाम काफी हो चुकी थी और अंधेरा गहरा चुका था, उसे उसकी आंखों की चमक में उत्तर मिल गया था। उसने हल्के से उसके कंधे को छुआ और फिर धीमे से बोली, ''अगर मैं तुम्हें कुछ और भी बताऊं तो क्या तुम सुनोगे ?''

द्वारका ने अपनी बंदूक कसकर पकड़ ली। उसे लगा कि वह लड़ाई के मैदान में जख्मी हुआ एक सिपाही है जिसका बराबर पीछा किया जा रहा है। कौन पीछा कर रहा है उसका ? ...यम ? ...क्या वह उससे बच सकता है ?

उसके भाई की पत्नी ने फिर बोलना शुरू कर दिया था...।

पशु

सुनहरी अमलतास के पेड़ के नीचे शहाबुद्दीन बैठा महावतों, उनके सहायकों तथा फंदेबाजों का तमाशा देख रहा था। वे सब गोल घेरे में उकडूं बैठे अफीम पर कश लगाने में मसरूफ थे। भुने हुए पान के पत्तों और अफीम की मिली-जुली गंध अपनी ही तरह का समां बांध रही थी। वह शहाबुद्दीन की नासिका में घुसी जा रही थी। बहरहाल, शहाबुद्दीन अपना ध्यान बंटाने के लिए अध-बुने मछली के जाल को पूरा करने में लीन हो गया।

शहाबुद्दीन वैसे तो मजबूत काठी का, ताकत से भरपूर युवक था, पर वह बोल नहीं सकता था। उसका रंग उजला था और बाल घने थे, पर उसकी नाक तोते की नाक के समान मुड़ी हुई थी और उसकी आंखों का रंग बुरादे के रंग जैसा था। अपने गूंगेपन के कारण वह हमेशा अपने को अकेला महसूस करता। पर इस वक्त तो अकेलापन उसे और भी अखर रहा था। उसे महावतों, उनके सहायकों और फंदेबाजों का व्यवहार बिलकुल पसंद नहीं था। वह यहां एक तरह से नया भी था। उसे लगता जैसे हर कोई षड्यंत्र रच रहा है। जब से मुख्य फंदेबाज चला गया था, वहां बाकी हर कोई नई-नई चालें चलने में ही लगा रहता। ये चालें चलने वालों का अगुआ एक दूसरा फंदेबाज, लखनचंद्र था। वह भी वहीं बैठा था, शहाबुद्दीन से मुश्किल से दस फुट की दूरी पर, अफीम से भरी पाइप पर कश लगाता हुआ।

महावतों के सहायक मटियूर तथा बोलेन, महावत डंडी तथा अनवर, फंदेबाज सुलेमान तथा रामनाथ–सभी गोल घेरे में बैठे अपनी-अपनी पाइप से अफीम का धुआं उड़ा रहे थे और बाकी तमाम दुनिया को भूले हुए थे। रामनाथ के सामने बांस की सुराही पड़ी थी। कुलसी नदी के दूसरी तरफ, राभा गांव से, उसने एक खास तरह की शराब खरीदी थी। अब 'दुनिया जाए भाड़ में' वाली अदा से वह उसे पीकर उसे इज्जत बख्श रहा था।

रामनाथ की त्वचा कोयले की तरह काली थी। उसके सर के बाल भी उतने ही काले थे। उसके चपटे चेहरे के गालों की हड्डियां पूरी तरह उभरी हुई थीं। था तो वह पतला-दुबला, पर हड्डियां उसकी बड़ी-बड़ी थीं। अपने कच्छे में वह किसी गोरे साहब का हब्शी सेवादार लगता था।

सुलेमान के शरीर पर भी मांस कम था। लोमड़ी जैसे तीखे चेहरे में जड़ी उसकी आंखों से मक्कारी टपकती थी। उसके हाथ-पांव इतने पतले थे कि उसके शरीर पर उसकी खाकी निक्कर तथा कमीज झूलती थी।

अनवर, सुलेमान के बरअक्स काफी तगड़ा था। उसकी खाकी पोशाक उसके शरीर से चिपकी रहती थी। उसका रंग धान की नई-नई, कोमल डंठलों के समान था। पर उसकी आंखों से मक्कारी टपकती थी। उसके बालों का रंग तांबे जैसा था और उसके जबड़े मजबूत थे। कद में भी वह हर किसी से लंबा था। शहाबुद्दीन ने उसे कभी हंसते हुए नहीं देखा था। उसके माथे पर चोट का निशान था। वह चोट पककर भूरे रंग की हो गई थी। हर कोई जानता था कि यह चोट उसे तब लगी थी जब रानी के पट्टे पर उसने एक लड़ाई लड़ी थी। फिर, हर किसी को यह भी पता था कि उस लड़ाई में उसने एक फंदेबाज का हाथ धड़ से ही उड़ा दिया था। दरअसल, उसके खूंखार मिजाज से हर कोई वाकिफ था, इसलिए हर कोई उससे थोड़ी दूरी ही बनाए रखता था। लेकिन अब वह एक फंदेबाज का ही पैरोकार था और वह फंदेबाज कुंकी (शिकार में सब से आगे रहने वाला हाथी) की सवारी करता था। उस फंदेबाज का नाम था लखनपाल।

शहाबुद्दीन यह सब समझता था। वह चुपचाप उस मंडली की गतिविधियों पर आंख रखे हुए था। वह सब कुछ समझता था, इसीलिए तो उसे शंकाएं भी सताती रहती थीं, और यही सब तो मुसीबत की जड़ भी बना। उसकी शंकाएं निराधार नहीं थीं।

महावत डंडी और बोलेन, दोनों जुड़वां भाई थे। दोनों काफी ठिगने थे। दोनों की गर्दनें छोटी थीं और रंग गेहुंआ था, पर दोनों के शरीर गठे हुए, मजबूत थे। दोनों देखने में भी एक जैसे लगते थे। उन्हें केवल उनके बालों से ही पहचाना जा सकता था—एक के बाल लंबे थे और दूसरे के कटे हुए। इसके अलावा बोलेन की आंखों में चपलता थी, लेकिन जहां पैसे की बात आ जाती, दोनों का लालच सामने आ जाता। एक बार शहाबुद्दीन को पता भी चल गया था कि डंडी ने उसकी जेब से बीड़ी का बंडल उचका लिया है, फिर भी वह चुप ही रहा। पर एक बार तो उसे रानी में पट्टेदार से शिकायत करनी ही पड़ी, क्योंकि उसकी कमर पर बंधे पटसन से बने बटवे को उसने उससे छीन लिया था। अब दोनों भाई कभी उसे मुंह चिढ़ाते और कभी उसकी नकल करते हुए कुछ भी ऊल-जलूल बके जाते। वे उसे जताना चाहते थे कि वह गूंगा है। वे खी-खी करते हुए हंसे जाते।

और वह लंबू तथा सींक-सा पतला महावत का सहायक, मटियूर ! उसने अपने सर के बाल सफाचट कर डाले थे। और उसका शरीर ! वह भी कोढ़ से दागी हो रहा था। गले में वह हमेशा काला धागा पहने रहता जिससे एक तावीज लटकता रहता। किसी समय इस तावीज का रंग जरूर चांदी जैसा रहा होगा, पर

अब तो वह पुरातन काल के मगरमच्छ की खाल की तरह दिखता था। शहाबुद्दीन को मटियूर की नृशंसता पर अक्सर हैरानी होती। एक बार तो उसने एक जंगली मुर्गाबी की गर्दन ही तोड़ डाली थी, और फिर उसे भूनकर मजे ले-लेकर खाता रहा। इसी अमलतास के पेड़ के नीचे बैठकर शहाबुद्दीन ने चुपचाप समूचा दृश्य देखा था। और आज वही मटियूर, लखनचंद्र का हर हुक्म बजा रहा था। उसके देखने के तरीके से भी घिन उसे होती थी। उसकी खाकी पोशाक उसके अंगों पर झूलती थी। उसके घुटने के निचले हिस्से में फोड़े जैसा उभार था जो नसों के गांठ का रूप ले लेने के कारण बना होगा। वह गांठ दिखती ऐसे थी जैसे किसी ने आंतों को यों ही कहीं ठूंस दिया हो।

मटियूर उससे खुलकर बात नहीं करता था। इसके बावजूद उनका रिश्ता कई पीढ़ियों का पुराना था। हटूबा डूबी गांव में उनके दादा उन्हें कई किस्से सुनाया करते थे जिनमें वे डूब जाते थे। वे उन्हें बताते कि जब बड़ा भूकंप आया था, तभी उनके पुरखे सुलेमान पर्वत-श्रेणी से आए थे। उस भूकंप के दौरान, वे बताते, जिस भूमि पर वे खड़े हैं, वह ऐसे ऊपर-नीचे होती जैसे वे समुद्र की लहरें हों। उधर लोग भी कहां-कहां से नहीं पहुंचे थे। उनके दादा प्रथम व्यक्ति थे जिन्होंने नष्ट हुई भूमि पर धान बोया था। क्या उन्हें याद था कि ठीक-ठीक किस भूकंप के दौरान उनके पुरखे पहाड़ों की वादियां छोड़कर इस जगह आए थे ? भूकंप तो आते ही रहते थे। एक भूकंप राजा सुकफा के काल में आया था, एक बड़ा भूकंप रोगी राज सुरिंफा के समय में आया था, एक और बड़ा भूकंप महाराजाधिराज रुद्रसिंह के जमाने में आया था, और एक बड़ा भूकंप सेनाध्यक्ष मीर जुमला के समय आया था। अनवर का कहना था कि उसके पुरखे सेनाध्यक्ष मीर जुमला की सेना के साथ आए थे।

पहले अनवर उसके साथ खुले मन से बात करता था। अब वह बदल गया था। वह भी लखनचंद्र के इशारों पर चलता था। पिछली बार जब वह रानी में पट्टे के पेड़ की चोटी पर बांस का मंच बनाए बैठा था, उसने कहा था, "इस बार कनरा-डींगा, चचरा तथा भोलागांव के मुसलमान कई छोकरों को रानी के पट्टे पर महावत के सहायक तथा फंदेबाज के प्रशिक्षण के लिए भेजेंगे। लगता है, वे वहां चाकरी करते-करते तथा पशुओं की देखभाल करते-करते तंग आ चुके हैं। जब ये तमाम छोकरे हाथियों की देखभाल के लिए आ जाएंगे, तब तुम्हारे जैसे गूंगे की क्या जरूरत रहेगी ? ...तुम तो न अफीम का धुआं उड़ाते हो, न राभा लोगों से प्राप्त की गई सुरा को मुंह लगाते हो और न ही तुम्हें औरतों में रुचि है। किस किस्म के आदमी हो तुम !"

...और आज वे गोल घेरे में बैठे आपस में कुछ खिचड़ी पकाते दिख रहे थे। वे लखनचंद्र के कान में कुछ फुसफुसा भी रहे थे। शहाबुद्दीन अमलतास के

पेड़ के नीचे बैठा मछली पकड़ने वाला जाल बुनने में ही लगा रहा, पर उसकी आंखें उनके व्यवहार का जायजा भी ले रही थीं। अब वे एक युवती के बारे में बात कर रहे थे। वह युवती और कोई नहीं, निमाई राभा थी। ताज्जुब, सभी पुरुष एक ही स्त्री के बारे में बात कर रहे थे। क्या ऐसा भी होता है ? क्यों नहीं, बड़े-बड़े कांड ऐसे ही होते हैं...।

शहाबुद्दीन को मच्छर काट रहे थे। वह वहां से उठा और लंगड़ाता हुआ खेमे के निकट इमली के भारी-भरकम पेड़ तक आ पहुंचा। उसके पांव का तलवा सूजा हुआ था। वहां कैक्टस के कांटे ने उसे चीर डाला था। यहां से वह हाथियों के कानों की फड़फड़ाहट के अलावा और कुछ भी सुन नहीं पा रहा था। चांदनी रात थी। चांद शाम को ही पके पपीते की बड़ी-सी फांक की तरह प्रकट हुआ था। जंगली मुर्गाबियों का एक झुंड उसके सर के ऊपर से उड़कर निकल गया था। बाद में उनकी कैं-कैं काफी देर तक सुनाई देती रही। उसके हाथ में उस समय दो सूइयां थीं—एक बांस की और दूसरी इस्पात की। उन्हें उसने जाल की तहों में खुभोया और जाल को एक तरफ पटक दिया। अचानक चमगादड़ों का एक झुंड पास की झाड़ी से चीं-चीं करता हुआ बाहर आया। शहाबुद्दीन लंबी घास को रौंदता हुआ आगे बढ़ा। कहीं पास में ही एक हाथी बांस के खोखले डंठलों को तोड़ रहा था। उसकी घर्घर उसे साफ सुनाई पड़ रही थी। वहां के परिवेश में एक रहस्यमयी चमक-सी व्याप्त थी। वह और आगे बढ़ा। लंबी-लंबी घास की पत्तियां उसके घुटनों से टकरा रही थीं।

कुछ ही देर बाद शहाबुद्दीन को पहाड़ी का रास्ता दिख गया। संध्या की आभा में यह ऊबड़-खाबड़ लालिमायुक्त पथ उस डोरी जैसा दिख रहा था जिसे खून से रंगा गया हो। पिछले एक हफ्ते से क्या वह इसी समय इसी रक्तरंजित पथ से नहीं आती रही है ? हां, ठीक इसी समय वह इस स्थल पर छिप-छिपकर आती थी और हर रोज एक ही सवाल पूछती थी : "कृष्णकांत कहां है ? ...अरे, हाथी के चाकर शहाबुद्दीन... नहीं, नहीं, महावत के सहायक शहाबुद्दीन, वह कहां चला गया है ? ...तुम तो हमेशा उसका साया बने रहते थे। बताओ, वह कहां है ?"

वह जानती थी कि वह बोल नहीं सकता, फिर भी वह उससे वही सवाल पूछे जाती। पिछले बीस दिनों से, उसके निकट घुटनों के बल होकर, वह उससे यही पूछ रही थी : "वह कहां है ? ...क्या वह बिना कुछ कहे चला गया है ? ...वह कब लौटेगा ? ...पिछली बार तो उसने धमकी भी दी थी कि वह चोरी-छिपे माल ले जाने वालों को धर पकड़वाएगा।"

उसने अपनी आंखों को अपनी चादर से दबा लिया। वह शहाबुद्दीन के सामने रोना नहीं चाहती थी। उसमें आत्म-सम्मान की भावना घर किए हुए थी। वह बुहत ही गरीब राभा परिवार से थी, फिर भी उसमें आत्म-सम्मान की भावना कूट-कूट

कर भरी हुई थी।

क्या नाम था उसका ? उसी राभा बाला का जो कुलसी की मंडी में घुइयां और मकई बेचती थी और उससे जो पैसा मिलता था, उससे वह सूत खरीद लेती थी ? हां, क्या था नाम उसका ? निमाई राभा। है न ? लगता था, कुलसी के किनारों पर उसके बाप के धान के खेत गिरवी पड़े हुए थे। फिर उसे बार-बार गुवाहाटी भी तो जाना पड़ता था, क्योंकि उसके पेट की बीमारी का पता ही नहीं चल रहा था। उसने अपने खेत एक काबुलीवाला के पास गिरवी रखे हुए थे। वह काबुलीवाला अपनी साइकिल पर हर वक्त कुलसी नदी के किनारे ही मंडराता रहता।

निमाई राभा के पिता की चिंताएं तभी से शुरू हुई थीं। निमाई ने यह तमाम गाथा मुख्य फंदेबाज कृष्णकांत को कह सुनाई थी। कृष्णकांत उसे अपना ही लगा था। वैसे भी कृष्णकांत का, कुलसी नदी के किनारे आबाद राभा गांव के लोगों से गहरा रिश्ता था। वह गांव की हर युवती का नाम लेकर पुकारता था—जैसे निमाई राभा, पुथी राभा, लक्ष्मी राभा। सच, कृष्णकांत को हर कोई पसंद करता था।

वे तीनों वहां परे एक बड़ी-सी चट्टान पर बैठे थे। कृष्णकांत उससे सटा बैठा था, और उससे ठिठोली करता हुआ बोला था, "तुम मेरे लिए बहुत चिंता करती रही हो। है न ? इसीलिए तुम इतनी दुबला गई हो और पीली भी पड़ गई हो !"

निमाई धीमे से मुस्कराई और फिर बोली, "न, न ! मैं तो बराबर एक कटोरा बकरी का दूध पीती हूं। मेरी मां को मरे अभी एक साल भी नहीं हुआ। हमारे यहां अगर मां की मृत्यु हो जाए तो हम एक साल तक दूध को मुंह नहीं लगाते।"

"अगर तुम्हारी मां चल बसे तो तुम एक साल तक दूध नहीं पीतीं। लेकिन अगर तुम्हारे पिता की मृत्यु हो जाए, तब ?"

"तब हम केला नहीं खाते। पूरे एक साल तक।"

क्या वे प्रेमी-प्रेमिका थे ?

न, न ! शहाबुद्दीन तो एक मुद्दत तक कृष्णकांत के पीछे साए की तरह लगा रहा था। कई बार उसने उन्हें कुलसी के किनारे-किनारे चलते देखा था। वहां लंबी-लंबी घास रहती, सागौन तथा शिलिखा के पेड़ों के झुंड होते, बांसों की घनी झाड़ियां होतीं। तब वह ऊंचे-ऊंचे पेड़ों से शहद के छत्ते उतारने की तैयारी में होता। अनेक बार उसने उन्हें एक साथ देखा था।

नहीं, कृष्णकांत ने तो कभी उसका हाथ तक नहीं छुआ था। नदी के किनारों की रेत पर, गोमर के पेड़ों के साए तले, या कई बार कंटीली झाड़ियों के निकट, या नदी की गहराई में से तुरी मछली की तलाश करते हुए, या हाथियों को नहलाने के बाद उनके बदन से जोंकों को हटाते हुए, वे केवल हंसते रहते या एक-दूसरे पर छींटाकशी करते रहते। जैसे कि वे अभी बालक ही हों।

उनके रिश्ते में कहीं भी पाप की झलक नहीं मिलती थी। यकीनन, पाप का तो सवाल तक नहीं उठता था। वे दोनों, जैसे कि भगवान के बालक थे।

वह कितनी सुंदर थी ! जिस दिन वह अपने बालों में गेंदे का फूल लगाकर आई थी, केवल उसके गूंगेपन ने ही उसके सौंदर्य का बखान करने से उसे रोका था। वैसे भी वह खूब गोरी-चिट्टी थी और उसके बालों का रंग सुनहरा-भूरा था। उसका शरीर नन्हे आम के ताजा पौधे की तरह दमकता था।

मटियूर तथा डंडी कहते, "निमाई राभा का बदन तो बिलकुल हिरनी जैसा है।"

बाबू और सुलेमान भी अपनी तरह से जोड़ देते, "उसके होंठ देखे हैं ? वे तो यूरियम फल के फांक की तरह हैं।"

रामनाथ भी कहां पीछे रहता ? "आह ! अगर एक बार हमें उसके हाथों को अपने हाथों में लेने का मौका मिल जाए ! उसका रंग बिलकुल ताजा-ताजा निकाले हुए दूध जैसा है।"

ताजा-ताजा निकाला हुआ दूध !

जिस समय शहाबुद्दीन अमलतास के पेड़ के नीचे बैठा मछली पकड़ने वाला जाल बुन रहा था, उस समय उन्होंने उसकी आंख का इशारा पा लिया था और वे घबराकर चुप हो गए थे।

चौकोर चेहरे वाले रामनाथ ने अपनी ठुड्डी को मलते हुए एक कहावत का सहारा लिया, "पेटू आदमी अपनी थाली को भरने के लिए ढेरों पत्तियां काटता है, लेकिन जिसे कोई लालच नहीं होगा, उसे काटने की जरूरत नहीं होती। वह जमीन से उठाकर भी अपना काम चला लेता है।"

शहाबुद्दीन उस पर हाथ उठा देता, पर वह जानता था कि बोलेन, रामनाथ तथा सुलेमान का वह मुकाबला नहीं कर पाएगा। इसलिए वह चुप ही रहा था। उनलोगों के बीच उसे ऐसे लगा जैसे कि खाली खेत में वह मात्र एक ठूंठ हो। उसका कोई मित्र भी नहीं था। वह, दरअसल, किसी के प्रति निकटता महसूस भी नहीं करता था। केवल कृष्णकांत ही था जिससे उसका लगाव था। निठल्ले बैठे महावतों के ये सहायक तथा फंदेबाज ! उनकी फब्तियों से वह परेशान था। जब वह कृष्णकांत तथा निमाई राभा के साथ कुलसी के उत्तरी तट पर जंगली मुर्गाबियों के झुंडों को देखने गया था, तब सुलेमान, मटियूर तथा रामनाथ की निगाहें उसे रात के वक्त चीते की लपलपाती आंखों के समान लगी थीं। डंडी और बोलेन नाम के जुड़वां भाइयों ने तो उस पर एक पुरानी सूक्ति ही दे मारी थी :

"अरे, वाह रे शहाबुद्दीन !
कहने को तो धोती पहने है
पर किनारों से वह फट रही है।

और जूते भी पहने ही हुए है,
भले ही वे फ्लप-फ्लप करे।
पर तुम्हारे कर्जे तो अदा नहीं हुए न !''

सुलेमान ने ऊंची आवाज में एक और सूक्ति सुनाई :

''सीझा राख से, पकाया तेल से,''
अर्थात् मेरा खाना उतना ही बढ़िया बना है जितना बरुआ लोगों का होता है।
ऊबड़-खाबड़ पीड़ादायक राह पर चलते हुए मेरा शरीर छिल गया है।
फिर भी मैं कहता हूं कि मैं डोली में ही जाता हूं।

इसके बावजूद शहाबुद्दीन ने उनका हर जगह पीछा किया, जैसे वह रोबोट (यंत्र-मानव) हो। निमाई राभा ने जैसे उस पर जादू कर दिया हो। दरअसल, हर कोई निमाई राभा का दीवाना था। निमाई उन वीरान बियाबान जगहों पर बेखौफ घूमती रहती थी। उसने कृष्णकांत को बताया कि वह हमेशा ऐसे ही घूमती रही है। उसे विश्वास था कि उसका कोई कुछ नहीं बिगाड़ सकता, और जिसका हृदय पवित्र हो, उसका कभी कुछ नहीं बिगड़ता।

एक बार वह अपने पिता के साथ कुलसी के उत्तरी तट पर जंगली हाथियों को लेकर जंगल में गई थी। हाथियों के उस झुंड में जो हाथी सबसे पीछे था, वह एकाएक रुका। वह अपने कान फड़फड़ा रहा था। फिर वह बार-बार होलंग के पेड़ से अपना माथा भी टकराने लगा। वह, दरअसल, उन्हें आगाह कर रहा था कि आगे न बढ़ें, बल्कि लौट चलें। निमाई सब कुछ समझ रही थी। वह उस क्षेत्र के हर प्रकार के पेड़ से परिचित थी। वह मुंजक हिरन और दलदली हिरन को भी पहचानती थी। उस इलाके के जंगल में उनके झुंड-के-झुंड दिख जाते थे।

''कृष्णकांत कहां गया होगा ?''

वह कई बार यहां आई थी और उसने खेमों में टिके हर व्यक्ति से यही प्रश्न किया था। वह पूछते-पूछते थक भी जाती थी। कृष्णकांत वह पहला फंदेबाज था जिसे कुंकी को चलाने की इजाजत मिली थी। वह बचपन से ही हाथियों के बीच रचा-बसा रहा था। कहा यह भी जाता था कि हाथी को आज्ञाकारी बनाने के लिए उसने कभी अंकुश या शूल का सहारा नहीं लिया। उन्हें चलाने के लिए वह हमेशा अपने पैरों के पंजों को ही काम में लाता था, और इससे उसके पैरों के अंगूठे अलग दिखने लगे थे। बाकी सभी कुंकियों के घावों से एक प्रकार की गंध आती थी, लेकिन कृष्णकांत के कुंकी से ऐसी कोई गंध या दुर्गंध नहीं आती थी। वह एक-मात्र व्यक्ति था जो हाथियों को गीत गाकर उन्हें साध सकता था या काबू में ला सकता था। हाथी के पांव के 'करी' नाम के रोग को जंगली जड़ी-बूटियों से ठीक करने के लिए उसे सभी नुस्खे याद थे। और यही कारण था कि सेवा

से निवृत्त होने के बाद भी वन अधिकारी, हंफरी साहब, उससे मिलने रानी के दवाखाने पर आए थे। साहब की पुरानी गाड़ी फोर्ड को खींचने के लिए उसी के हाथी को काम में लाया गया था।

वाकई, हंफरी साहब उससे रानी के दवाखाने पर मिलने आए थे, और इसका असर यह हुआ था कि पट्टेदार कृष्णकांत को इज्जत की निगाह से देखने लगा था। साहब ने पहले कृष्णकांत की पीठ थपथपाई थी और फिर उसे अपनी छाती से चिपका लिया था।

इतना ही नहीं, कृष्णकांत ने और भी कई आश्चर्यजनक काम कर दिखाए थे। उसके बारे में यह मशहूर था कि उसने 'मस्त' (यौन उत्तेजना से पूर्ण) हो गए सात हाथियों को एक साथ पकड़ा था और उन्हें काबू में किया था। ऐसे हाथियों को काबू में लाना कोई आसान काम नहीं था। हाथी जाने कैसा रुख अख्तियार कर ले। और यही कारण था कि वह पट्टेदार ब्रिकोदर सिंह के यहां हाथियों की देखभाल करता था, उसे कलसी के दक्षिणी किनारे पर रह रहे हाथियों के दूसरे मालिकों के यहां से भी अकसर संदेशे आ जाते थे जिनका उसे पालन करना होता था। ब्रिकोदर सिंह की हथिनी, नयनमाला, तो इस तरह सध गई थी कि वह दूसरों के लिए उदाहरण बन गई थी। दूसरे, जमातुल्ला कंपनी द्वारा आयोजित हाथी-दौड़ में भी कृष्णकांत का हाथी विजयी रहा था।

हाथियों के बीच बराबर रहने के कारण कृष्णकांत देवता-तुल्य समझा जाने लगा था। उसका नाम उन तस्करों में नहीं था जो जंगल में कई कारगुजारियां करते थे। वह कहता था कि वह उन्हें पकड़वा देगा।

कृष्णकांत, हाथी-देव ! उसे प्रभामंडल से युक्त कर दिया गया था। महावतों और फंदेबाजों को उससे ईर्ष्या क्यों न होती ? शायद यही कारण था कि लखनचंद्र का खून हर वक्त उबलता रहता। कृष्णकांत उसूलों पर चलने वाला व्यक्ति था। लखनचंद्र को पूरा विश्वास था कि जब तक कृष्णकांत जिंदा रहेगा, उसकी विजय-पताका कृष्णकांत के पांवों तले रौंदी जाती रहेगी।

लखनचंद्र की नृशंसता भी जगत-प्रसिद्ध थी। हर कोई जानता था कि एक बार हाथी के शिकार के दौरान उसने हथिनी के दूध-पीते बच्चे को जान-बूझकर पकड़ लिया था और हथिनी भालों से बींधे जाने के कारण खत्म हो गई थी। और यह भी सब जानते थे कि सरकार द्वारा पकड़े जाने के डर से महावतों, उनके सहायकों तथा फंदेबाजों ने उस दुधमुंहे बच्चे को कुलसी के किनारे तस्करी में लिप्त तस्करों के हाथों बेच दिया था। पर खुल्लम-खुल्ला कोई भी कुछ बोलने की हिम्मत नहीं कर पाता था। अगर लखनचंद्र का लाइसेंस रद्द हो जाता तो वह क्या कर बैठता, इसका किसी को अंदाजा नहीं था।

हाथी सर्वज्ञ प्राणी है। क्या नृशंसतापूर्वक उसे पकड़ा जा सकता है ?

एक अर्से से हाथियों के पट्टे पर रहने के कारण वे सभी लोग पशु बन गए थे। उनकी चमड़ी गेंडे की चमड़ी के समान मोटी दिखती थी। उनके हृदय ध्रुव प्रदेश के भालुओं के लोम के समान हो गए थे जो तैरकर समुद्र पार कर लेने पर भी सूखे ही रहते हैं। उनकी पिपासा रक्त चूसने वाले प्राणियों की पिपासा बन गई थी। यति केंकड़े की तरह वे दूसरों से मिलता-जुलता कोई भी रूप धारण कर सकते थे। आवश्यकता पड़ने पर वे क्या-कुछ नहीं कर सकते थे ! वे आदमखोर शेर बन सकते थे जो अपने दांतों से शिकारियों के कपड़े तक चबा जाते हैं। वे बौने-से जुड़वां भाई, डंडी और बोलेन, गंजी खोपड़ी वाला महावतों का सहायक मटियूर, चौकोर चेहरे और कोयले जैसा काला रामनाथ ! और वह दहशत पैदा करने वाला लखनचंद्र जिसकी दाईं आंख के ऊपर एक मोटा-सा मस्सा हर वक्त फुदकता रहता था ? और वह कौन था, नुकीले, लोमड़ी के चेहरे वाला ? सुलेमान ?

...उस क्षण शहाबुद्दीन ने कल्पना की कि उनके नाखून लंबे हो गए हैं और उनके दांत तेज हैं। उत्सुकतावश उसने सड़क की दिशा में अपनी आंखें उठाईं। सड़क खून की नदी के समान दिख रही थी। नहीं, निमाई अभी तक नहीं पहुंची थी। इससे पहले वह कृष्णकांत के बारे में पूछताछ करने अनेक बार आ चुकी थी। ऐसा लगता था कि किन्हीं राभा लकड़हारों ने उसे बता दिया था कि उन्होंने कृष्णकांत को लखनचंद्र के साथ घने जंगल की ओर जाते देखा था। उन्होंने लखनचंद्र के हाथों में विशाल हाथीदांत भी देखा था।

क्या उसे वहां, परे, दलदल की जानकारी थी ? कृष्णकांत भली-भांति जानता था कि किस होलक पेड़ पर , कुलसी के किनारे किस बोनसम के पेड़ पर, मधुमक्खियों के बड़े जायकेदार छत्ते हैं। यह सब जानकारी उसकी उंगलियों पर रहती थी। उसे यह भी पता था कि दरभंगा और दीनाजपुर से आने वाले तस्कर, जिनके पटसन से बने बटुए पैसों से भरे रहते थे, ठीक-ठाक कहां इंतजार करते हैं। वह यही कहता रहता कि वह दो-एक दिन में ही इन तस्करों को धर पकड़ेगा और अधिकारियों के हवाले कर देगा। ...लेकिन राभा लोग तो यही कहते रहते कि कृष्णकांत लखनचंद्र के साथ देखा गया था, और लखनचंद्र के हाथों में हाथीदांत था। अजीब गड़बड़-घोटाला था यह सब। ...या यह भी हो सकता है कि कृष्णकांत उसे वह स्थल दिखाने ले गया हो जहां भविष्य में हाथियों को फांसा जा सकता था। कृष्णकांत से बढ़कर किस की दृष्टि तेज थी ? उससे बढ़कर और कौन ठीक-ठीक बता सकता था कि कौन-सी हथिनी अभी तक कैशोर्य में है और कौन-सी मां बन चुकी है। वह तो आठ सौ गज की दूरी से भी यह सब बता सकता था।

सच, केवल कृष्णकांत ही सब बातों में दक्ष था। हाथियों का चुनाव करते समय उनके नाखूनों की लंबाई-चौड़ाई, उनका गठन, उनका घेरा, उनकी पूंछ की पैमाइश—वह सब कुछ बताना उसके लिए संभव था। वह सब कुछ जानता था।

कृष्णकांत है कहां ? वह कहां हो सकता है ?

एकाएक पास की कंटीली झाड़ी में से किसी के गला साफ करने की आवाज सुनाई पड़ी। शहाबुद्दीन ने चारों ओर देखा। अरे, यह तो लखनचंद्र है। उसकी आंख के ऊपर का मस्सा बुरी तरह फड़फड़ा रहा था, जैसे उसे जबरदस्त कुढ़न और परेशानी हो। चेचक के दाग से भरा उसका चेहरा बड़ा ही वीभत्स लग रहा था।

"अरे, बेवकूफ शहाबुद्दीन ! तू यहां ? इसलिए कि तुझे कांम न करना पड़े ? मैंने तुझे गद्दियां बांधने को नहीं कहा था ? गले के पट्टे तूने कहां छिपाए हैं ? तुझे आज ही मेन डिपो लौटना पड़ेगा। वहां से आज दो लोग आए हैं। वहां दो हाथियों को 'करी' रोग लग गया दिखता है। उनके परमिट रद्द कर दिए गए हैं। सुन, अक्ल के कच्चे ! तूने कृष्णकांत से जड़ी-बूटियों वाला इलाज सीखा था न ! तुझे उनके साथ डिपो लौटना होगा।"

शहाबुद्दीन ने अपना सर उठाकर उसकी ओर देखा। साफ ही था कि लखनचंद्र उसकी उपस्थिति वहां नहीं चाहता था और वह यह भी नहीं चाहता था कि उसका काम अधूरा ही रह जाए।

उस सबके दांत तीखे थे। उनके नाखून भी पंजों के समान थे।

"तुम डिपो के लिए कल सवेरे रवाना हो जाओगे। बुधवार को हम हाथियों को फंदे डालेंगे। जमातुल्ला का कुंकी वाला लाइसेंस खत्म हो चुका है। उसने अपना कुंकी हमें दे दिया था। तुम्हें डिपो हाथी के साथ लौटना होगा।"

शहाबुद्दीन ने एक बार फिर अपना सर उठाया और उसकी ओर देखा। उसके सीने से जैसे अबूझ-सी ध्वनि उठ रही थी। उसके चेहरे पर अव्यक्त-सा विषाद घिरने लगा था। उसके भीतर फिर वही प्रश्न उठा : क्या यह सबके साथ होता रहा है ? हां, सभी के साथ—लखनचंद्र, सुलेमान, रामनाथ, मटियूर, डंडी, सभी के साथ। उन सबके अब कितने लंबे-लंबे बाल थे...

उनके दांत भी तो तेज हो गए थे।

क्या उनके हाथों और पांवों के नाखूनों पर खून के कतरे थे ?... क्या करे वह ?

वे तो किसी बड़े मंसूबे को बुनते दिख रहे थे।

अंधेरा उतरने लगा था। कहीं दूर से हाथियों द्वारा बांस के डंठलों को तोड़ने की आवाज आ रही थी। वह आगे बढ़ नहीं पा रहा था। सामने लखनचंद्र था जो भयभीत दृष्टि से उधर देखे जा रहा था।

शहाबुद्दीन ने खेमों की दिशा में चलना शुरू कर दिया। लखनचंद्र उसके ऐन पीछे-पीछे चलने लगा।

मिट्टी के तेल की ढिबरी की रोशनी में शहाबुद्दीन ने फिर अपने जाल पर काम करना शुरू कर दिया। चिथड़े हो रहे खेमे के सुराखों में से उसे आग की

लपट दिख पड़ी। आग के सामने बैठे वे सब आपस में बतिया रहे थे। अब तो वे भी, जिनके पास अफीम का परमिट था, नशे में नहीं दिख रहे थे। और तो और, भुने पान के पत्तों और अफीम की मिली-जुली तीखी गंध भी नहीं उठ रही थी।

उन सब ने पटसन की डोरी से बुने अपने-अपने बटुए निकाले हुए थे। वे बटुए आग की तेज रोशनी में पुथी मछली के छिलकों की तरह चमक रहे थे। इन्हीं बटुओं में वे अपने पैसे रखते थे। लग रहा था जैसे कि वे मछलियां उसी क्षण गदले पानी में से कूदकर बाहर आ पड़ी हों। लपटों के जाल में लखनचंद्र का चेचक के दाग से भरा चेहरा सूखे भिड़ के छत्ते की तरह दिखाई दे रहा था, मटियूर की त्वचा के सफेद दाग चीते की खाल के समान दिख रहे थे और डंडी के माथे का काला धब्बा बहते जख्म जैसा लग रहा था। उधर बोलेन की हल्के रंग की आंखें अंधेरे में दहकते अंगारों-सी दिख रही थीं।

उसे उनमें से हर कोई षड्यंत्रकारी लगा। उनके बाल लंबे थे, नाखून तेज थे और दांत नुकीले थे। कृष्णकांत ने अपनी ईमानदारी के बल पर हर किसी के चेहरे के नकाब को उतार फेंकने की धमकी दी थी।

पूराने तंबू की झिर्रियों में से बाहर की दुनिया ज्यादा स्पष्ट दिख रही थी। अक्तूबर महीने की धुंध जंगल में पूरी तरह व्याप्त थी। तंबू के पास कुछ सागौन के पेड़ थे। कुछ ही दिन पहले इन पेड़ों पर फूल खिले थे। उनका रंग नई ब्याई गाय के पहले दूध के समान था। दूर से इन फूलों के गुच्छे पेड़ों से लटकते मकड़ी के जाले के समान दिख रहे थे। अब चंद्रमा की रोशनी में ये जाले उन घोंसलों की तरह लग रहे थे जिन्हें पक्षी छोड़ चुके हों। बांस भी कई तरह के थे और उनके बीच कुछ विचित्र-सा प्रकाश था, जैसा इधर-उधर फुदक रहे घोंघुओं के शरीर से निकलता है। कहीं एक मुंजक हिरन दयाद्र स्वर में सुबक-सा रहा था।

शहाबुद्दीन के दिल में जैसे कि मांस का एक लोथड़ा खिसक आया। उसके साथ हमेशा ऐसा ही होता था। अपनी मां की याद आने पर भी ऐसा ही होता था। मां को वह पीछे गांव में छोड़ आया था। अपने भाई, कुतुबुद्दीन, की याद करके भी उसके साथ ऐसा ही होता था। और अब जबकि वह निमाई राभा के बारे में सोच रहा था, तब भी वैसा ही हो रहा था।

शहाबुद्दीन का तंबू हिजल के एक पेड़ से लगा पहाड़ी के निकट था। हाथी के शिकार पर जाने से पहले, उसने कृष्णकांत के साथ अपना समय पुराने गद्दों पर लेटकर और बैठकर बिताया था। कभी ये गद्दे हाथियों पर बैठने के काम आते थे।

एकाएक उसे फटे-पुराने तंबू की दिशा में आती मधुमक्खियों की घूं-घूं की आवाज-सी सुनाई पड़ी। उसने झांककर बाहर देखा। कुछ राभा लोग मंडी से लौट

रहे थे। निमाई राभा भी उनके साथ थी। उस समय ऐसा प्रकाश फूटा जैसे दिन का उजाला फैल गया हो।

"शहाबुद्दीन ! कृष्णकांत ?"

शहाबुद्दीन ने अपना सर हिला दिया।

निमाई राभा बोली, "फंदेबाज लखनचंद्र ने कहा है कि वह पूर्णमासी के दूसरे दिन कृष्णकांत के बारे में खबर देगा। उसने मुझे बुला भेजा है।"

फिर वह शहाबुद्दीन के और निकट आ गई और उससे घुल-मिलकर बतियाने लगी। शहाबुद्दीन ने आर्तनाद करते हुए अपने हाथों से जमीन को पीटा और कुछ बताने की कोशिश करता-सा दिखा। जिस समय वह कुछ समझाने की कोशिश कर रहा था, उस समय उसके मुंह से झाग निकलने लगा था। उसकी आंखें उसके माथे में से ऐसे बाहर आ रही थीं जैसे आमड़े अपने गड्ढों से बाहर आते हैं।

निमाई उलटे पांव लौट गई। उसके साथी, जो मधुमक्खियों की तरह भिनभिना रहे थे, उसे वहीं छोड़कर चलने को तैयार थे। फिर देखते-ही-देखते वे अंधेरे में गायब भी हो गए।

शहाबुद्दीन अपने घुटनों में सर रखे कुछ समय सुन्न हुआ बैठा रहा। सब कुछ इतना अचानक जो हुआ था ! निमाई राभा शहाबुद्दीन को समझ नहीं पाई थी... शहाबुद्दीन की आंखों से टप-टप आंसू गिर रहे थे। उसे कोई नहीं समझ पा रहा था। वह हमेशा अकेला था। उसे अगर कोई समझता था तो वह थी उसकी मां तथा उसका भाई। वह चाहे गूंगा था, पर उसकी मां उसके मन में आने वाले हर विचार को समझती थी। शायद सभी गूंगे बालकों की मांएं अपने बेटों के मनोभावों को पकड़ने की क्षमता रखती हैं। कृष्णकांत ने भी उसे समझा था। उसकी मां तथा भाई के बाद उसे समझने वाला केवल वही था।

कृष्णकांत ! कहां होगा वह ? निमाई राभा ने कहा था कि उनकी पंचायत को दावत देकर वह राभा संप्रदाय में स्वीकार्य हो सकता था। फिर तो आनंद-ही-आनंद होगा।

आनंद...! क्या महत्व रखता है यह शब्द ?

यह ऐसा शब्द है जिसके उच्चारण-मात्र से दुख-ही-दुख मिलता है। कौन जनक है इस शब्द का ? शहाबुद्दीन अपनी मां के वक्ष पर अपना सर रखकर रोना चाहता था। वह पच्चीस बरस का हो रहा था, फिर भी वह अपनी मां के वक्ष पर रोना चाहता था।

एकाएक उसे कहीं बहुत निकट से हाथी द्वारा बांस के डंठलों को तोड़ने की आवाज सुनाई पड़ी। हाथी ! यह तो एक सर्वज्ञ जीव है। हाथी—यह तो आदमी के दिल की भाषा तक पढ़ लेता है।

हाथियों को इनलोगों की साजिशों की भनक मिल गई थी। उसने ऐसी कई घटनाओं के बारे में सुन भी रखा था। एक बार एक लंबे दांत वाला हाथी तथा एक बिन ब्याई हथिनी एक तंबू के चक्कर लगाते रहे थे। वे कुंकियों पर हमला करने को तैयार थे।

हां, बेशक वे पास ही कहीं बांसों के झुरमुटों को चीरे दे रहे थे। उसे उनके चीरने की आवाज स्पष्ट सुनाई दे रही थी।

क्या कोई विपत्ति तो नहीं खड़ी होने वाली ? तामर बील के गोसाईं ने शिकार के लिए एक हाथी उधार दिया था। वह हाथी पहली बार जंगल में दाखिल हो रहा था। जरा-सा भी कहीं खटका होता, वह भयभीत होकर भागने लगता।

शहाबुद्दीन उन हाथियों की झलक पाने के लिए तरस रहा था। उसकी मां ने एक बार पट्टेदार से कहा था, "हाथियों की पट्टा-भूमि पर काम करने की उसे कोई जरूरत नहीं। अगर वह सहायक का काम भी करता रहता है, तो हमारे लिए काफी है। बोल तो सकता नहीं वह।"

इस पर पट्टेदार भारी आवाज में बोला था, "एक मूक व्यक्ति सहायक के नाते ज्यादा नहीं कमा सकता। पर मुझे एक ऐसा व्यक्ति ही चाहिए जो बोल न सके।" फिर उसने सिक्कों से भरा एक बटुआ निकाला था और उसे उसकी मां की मुट्ठी में ठूंस दिया था। इसके बाद वे सभी मूक हो गए थे। उनके पास कोई शब्द न था। वह ठीक उसी की तरह शब्दहीन थे।

पट्टेदार एक काला-कलूटा, भोंडा, गंवारू व्यक्ति था। सर पर वह ऐंडी रेशम की पगड़ी बांधता था। उसके कपड़े भी रंग-बिरंगे थे, अजीब तरह के। क्या पहने हुए था वह ? मिराजी (लंबी आस्तीनों वाली कमीज) या फोटुवा (छोटी आस्तीनों वाली कमीज) ? उसकी धोती हमेशा उसके घुटनों के ऊपर रहती। उसके पांवों पर नागरा जूते होते जिनका अगला भाग काफी बल खाए होता। उसकी निगाहें इतनी अजीब थीं कि शहाबुद्दीन उनकी ताब नहीं ला पाता था। वह उसकी तरफ न सीधा देख पाता, न ही अपना सर उठाकर उससे बात कर पाता।

सुनने में यह आ रहा था कि यह पट्टेदार तस्करों से मिला हुआ है, और ये तस्कर बेंत के जंगलों में तथा नदी के तटों पर उस स्थल पर रहते हैं जहां नदी दो हिस्सों में बंटती है। कृष्णकांत ने उन्हें धमकाया था कि वह उन्हें नंगा कर देगा और सबको उनका असली रूप दिखा देगा।

क्या निमाई फिर चली आई है ? क्या वह कृष्णकांत की तलाश में आई है ?

लखनचंद्र ने उसे अपने तंबू में बुलाया था। वह यह फैसला पहले ही कर चुका था कि अगले तीन-चार दिनों में वह सागौन के एक खास पेड़ के नीचे बांस का मंच बनाएगा ताकि उसी दिन हाथी भी पकड़ सके। जिस दिन उसने निमाई

राभा को बुलाया था और हाथियों को फांसने का भी निश्चय किया था, वे दोनों दिन एक ही थे...

कृष्णकांत कहां है ?

राभा लोगों का कहना था कि वह लखनचंद्र के साथ कुलसी के उजाड़ जंगलों में दाखिल हुआ था। लखनचंद्र के कंधों पर एक विशाल हाथीदांत था।

उन दोनों के हाथों में छोटे थैले थे।

शायद वे सब एकजुट हो गए थे और उस पर टूट पड़े थे और शायद उन्होंने उसका वध भी कर दिया था। क्या उन्होंने साफ-साफ उसका वध कर दिया था, या उसे भालों तथा गुप्तियों (खंजर) से बींध डाला था और उसकी लाश को कुलसी के जल में प्रवाहित कर दिया था ? हां, यही हुआ होगा। लंबे दांत वाले, सजे हुए हाथी की जो सवारी करने की जुर्रत करते हैं, उनका यही परिणाम होता है और उसके साथ हुआ भी यही।

कृष्णकांत को गायब हुए बीस दिन से ज्यादा नहीं हुए थे। फिर भी उन चंद दिनों में वह सूखकर तीला हो गई थी।

शहाबुद्दीन क्या करे ? गजेली (बरसात में हाथियों का शिकार) के दौरान भी लखनचंद्र ने कहा था, "यह नामाकूल हमारे किसी काम का नहीं। बस, इससे तो गद्दियों को कसवाओ, अफीम पीने वालों के लिए पान के पत्तों और अफीम को भुनवाओ तथा खाना पकवाओ। इसका काम, बस, यह देखना होना चाहिए कि क्या हाथियों के गले के फीते और पट्टे ठीक से तो बंधे हैं..."

क्या वाकई वह किसी काम का नहीं ?

तब वह पहली बार गजेली पर गया था। उससे कहा गया था कि वह कुंकी को उसकी पूंछ के पास भाले से कोंचता रहे। उस समय उसके हाथ-पांव फूल गए थे और उसकी पकड़ इस कदर ढीली हो गई थी कि भाला उसके हाथों से छूटकर जमीन पर जा गिरा था। अब वह हाथी को भाले से कैसे कोंचे ? यह असंभव था। वह इस घटना को कभी भूल नहीं सकता था, कभी नहीं। सागौन के पेड़ उन दिनों फूलों से लदे हुए थे। इन पर बरसात के दिनों में ही फूल आते हैं। फूलों के गुच्छे मकड़ी के जाले से बांधी गई छोटी-छोटी गठरियों के समान दिख रहे थे। यह सागौन के फूलों के खिलने का समय था।

उसके कंधे को थपथपाते हुए कृष्णकांत ने कहा था, 'हिम्मत रखो !' फिर उसने उससे मजाक करते हुए उत्फुल्ल भाव से पूछा था कि वह हाथी के पिछवाड़े को कोंचकर उसे ठीक राह पर क्यों नहीं रख पाया था। उसने हंसते हुए एक गीत भी रच डाला था :

> 'मैंने एक ही तीर छोड़ा और सात सिंहों को ठिकाने लगा दिया,
> मुझे कुछ लज्जा भी आई, इसलिए मैंने यह भेद नहीं खोला,

छह महीने तक घेरा डाले रखने के बाद मैंने एक चुहिया का वध किया,
अब ढोल जोर-जोर से ऐलान कर रहे हैं कि मैं महान हूं।'

कृष्णकांत के पास चुहलबाजी की कमी न थी। वह अपने चुटकलों और हंसी से शहाबुद्दीन के दिल को गुदगुदा देता। वह लंबे दांत वाले हाथी की सवारी आसानी से कर सकता था। पर वह गया कहां ? क्या वह लौटेगा ? अगर वह नहीं लौटा तो निमाई राभा का क्या होगा ?

तंबू के छेदों में से शहाबुद्दीन ने फिर बाहर झांका। वहां तो दुनिया ही दूसरी थी। चांदनी रात के स्वच्छ आकाश में उसे सफेद बादल की एक लंबी फांक दिखाई दी। ऐंडी वस्त्र की तरह यह पूर्वी आकाश में छाया हुआ था। उस क्षण शहाबुद्दीन की कल्पना भी काम करने लगी थी। उसे लगा, यह ऐंडी वस्त्र नहीं है, यह पट्टेदार की पगड़ी का हिस्सा है जो हवा में उड़ रहा है।

पट्टेदार की पगड़ी ? पट्टेदार को तो दक्षिणी तटों पर हर कोई जानता था। उसे हमेशा उन आदमियों की तलाश रहती थी जो महावत के सहायक या फंदेबाज के रूप में काम कर सकें। उसके बारे में यह अफवाह थी कि वह कभी-कभी बिना कर चुकाए हाथी को गायब कर देता है। और तो और, वह चराई कर की रसीदों में भी हेर-फेर कर डालता था। उसे पता था कि इस इलाके में किस राभा बाला के बाल सुनहरे हैं और किसके मछली के छिलके की तरह चमकते हैं। वह हर घर की हर युवती की उम्र फौरन बता सकता था। लोगों का कहना था कि वह केवल कृष्णकांत से डरता था। कृष्णकांत के क्या कहने ! वह तो जंगलों में बड़े-बड़े पशुओं से जुड़े मधुर गीत गाता घूमता था और साथ में यह धमकी भी देता रहता था, "मैं तब तक चैन नहीं लूंगा जब तक हाथीदांत और हाथियों की तस्करी करने वालों को नंगा न कर लूं। मैं दरभंगा से आए तस्करों को सरकार को पकड़वा कर रहूंगा।"

कृष्णकांत कहां चला गया है ?

निमाई राभा का क्या होगा ?

बाप रे, उनके लंबे-लंबे बाल और नुकीले दांत ! उनके तीखे नाखून !... ओ मेरे...!

अगली सुबह शहाबुद्दीन कुंकी को लिवाता हुआ बड़े डिपो को लौट गया। कुंकी का परमिट खत्म हो चुका था।

बीस दिन ऐसे ही बीत गए। उसके सुनने में आया कि पट्टे में हाथी पकड़ा गया है। वह हाथी कुलसी के दूसरे तट पर बच निकला था। ...एक नहीं, तीन-तीन हाथी बच निकले थे। ऐसा ही उसने सुना था।

शहाबुद्दीन को विश्वास नहीं हो रहा था कि तीन-तीन हाथी बच निकल सकते हैं। पर वह किसी को बताए भी क्या ? वह केवल अपने ख्यालों को अंदर-ही-

अंदर मथ सकता था। ...अंत में उसे एक राभा से पता चला था कि उसने कुलसी के तटों पर कुछ ऐसे चिह्न देखे थे जो व्यथा के सूचक थे। यह राभा हाथियों के लिए फल और चारा लाता था।

एक बात यह भी फैली थी कि शहाबुद्दीन कुलसी के तट पर दो बंदूकधारी वनरक्षकों के साथ देखा गया है। यह बात बहुत निराली थी... शहाबुद्दीन प्रतिरोध में पट्टेदार के द्वार पर बिना हिले-डुले तब तक बैठा रहा था जब तक कि बंदूक वाले वन-रक्षक उसके साथ नहीं किए गए। उसने कुछ भी खाने से इनकार कर दिया था, यहां तक कि पानी भी नहीं पिया। एक दिन या दो दिन तक नहीं, पूरे तीन दिन तक। फिर वह बराबर घुटनों में सर छिपाए बैठा रहा था। वह जो इशारे करता, वे भी वही होते—बंदूक, रक्षक... कुलसी का तट—खतरा ! महावत की तरह वह एक कुंकी पर सवार भी हुआ। उसके पीछे दो वनरक्षक भी सवार हुए। उनके हाथों में बंदूकें भी थीं।

दूर, वहां, सागौन के फूल थे जो गुच्छों में मकड़ी के जाले की तरह लटक रहे थे। वे कुम्हलाए हुए, सूखे हुए फूल थे। पिछली बार जब वह गजेली के लिए आया था, ये फूल ताजा दूध के रंग के दिखते थे। वे गंडकरोई, होलक, चाम, टिटासपो तथा खैरत के पेड़ों के बीच गए थे।

खुरपी से बार-बार कोंचने से हाथी के सर में जो घाव हो गए थे, उनसे उठने वाली बदबू उसके नथनों में घुसी जा रही थी। शहाबुद्दीन के पांव हाथी के गले के पट्टे के नीचे खुद-ब-खुद ऐंठते जा रहे थे। वह पहली बार तब महावत के नाते अपने जाने-पहचाने जंगल में आया था। उसके मन में कोई डर भी नहीं था। बल्कि उसका डर बिलकुल गायब था।

किसे श्रेय दे वह इसके लिए ? कृष्णकांत को ? निमाई राभा को ? किसके कारण यह सब हुआ—निमाई राभा के कारण या कृष्णकांत के कारण ?

होलक के पेड़ से कुछ मोटी-मोटी बेलें नीचे लटक आई थीं और बार-बार उसके बदन को छू रही थीं। चारों दिशाओं में, समूचे क्षेत्र पर, बड़ी विचित्र आभा फैली हुई थी। यह काफी घना जंगल था, जहां दिन में भी अंधेरा था। ऐसे अंधेरे में निमाई राभा की मृदु हंसी लहरियां बनकर बाहर आ रही थी। कहीं-कहीं ऐसा भी लगता जैसे उसके सुनहरे-भूरे बाल, गिरगिट की त्वचा के रंग के, चारों ओर फैले हैं।

अगर कृष्णकांत नहीं लौटा, तब ?

वह कह भी क्या सकता है ?

'मैं गूंगा हूं। मैं मुसलमान हूं। अगर तुम मुझे स्वीकार नहीं भी करोगी तब भी कोई फर्क नहीं पड़ता। निमाई राभा, मैं भाई की तरह तुम्हारी देखभाल करूंगा।'

क्या वह इन विचारों को सामने ला सकता है ? वह तो बेजुबान है। उसके

पास तो वाणी है ही नहीं। ...लेकिन उनका कहना था कि प्यार की कोई भाषा नहीं होती। उसकी मां भी यही कहा करती थी—"खुदा प्यार है, प्यार खुदा है...। यहां भाषा की जरूरत ही कहां है ?"

दूर से उसे सागौन के पेड़ पर बांस के एक मंच की झलक दिखाई दी। बड़े फंदेबाज कृष्णकांत ने इस मंच की ऊंचाई से हाथियों का एक झुंड देखा था। वहां बैठे-बैठे वह हर हाथी की ठीक-ठीक उम्र बता सकता था। वह ब्याई हुई हथिनी और कच्ची हथिनी के बीच भी पहचान कर सकता था। उसे बदमाश हाथियों की भी पहचान थी। उसे यह भी पता था कि किस हाथी की पीठ पर सोने के सिक्कों से भरी बोरी लादी जा सकती है और किस हाथी की पीठ पर सकजामा (सजावटी वस्त्र) जंचेगा। वह यह सब कुछ जानता था। दरअसल, मंच की ऊंचाई पर बैठे-बैठे वह मजाक करता हुआ यह भी बता देता था कि कौन-सा हाथी सर्कस के लिए ठीक रहेगा, किस पर सरदार को बैठाया जाए, कौन मंदिर के बांसुरी बजाते देवता की मूर्ति का वजन सह पाएगा, कौन मस्त बहार में पगला जाएगा... कृष्णकांत इसी मंच पर बैठता था... या खुदा, उनके लंबे-लंबे बाल, नुकीले दांत और तीखे पंजे...!

उस तंबू का अब कुछ नहीं बचा था। उसके डंडे, हाथियों की गले की रस्सियां, गुदड़ी हुई गद्दियां जिनके अंदर उनकी आंतें तक दिखती थीं, अफीम के डिब्बे, गाय की खाल की तरह मुड़ी-तुड़ी पड़ी छोलदारी की तिरपाल—इन सबसे यही आभास होता था कि तूफान आया और निकल गया और जो कुछ उसके रास्ते में आया, उसे उसने रौंद डाला। उसे यह देखकर धक्का लगा कि सब कुछ बरबाद हो चुका था।

बंदूकधारी रक्षकों ने कहा, "लगता है, जंगली हाथी पकड़ा गया है और उसे इधर से ले जाया गया है। इसीलिए दूसरे हाथी गुस्से से अंधे हो गए और बदले की भावना से भर गए।"

राभा गांव का एक खुजलाया हुआ कुत्ता लकड़ी का एक टुकड़ा चाटे जा रहा था। एक रक्षक उसे गौर से देखने लगा। वह मारे घबराहट के पीछे हट गया। लकड़ी का टुकड़ा सूखे खून के चकत्तों से भरा पड़ा था। किसका खून हो सकता है यह ? हाथियों का खून है या किसी इंसान का ?

रक्षकों ने अपनी बंदूकें अपने कंधों से उतारकर अपने हाथों में ले ली थीं।

शहाबुद्दीन अब तक चुपचाप खड़ा था। वह अब जोर से चिल्लाया। रक्षक उसके निकट आ गए और यहां-वहां देखने लगे। बांस की बाड़ के पास किसी ने सुपारी का पौधा बो रखा था। पौधे से कपड़े का एक टुकड़ा बंधा था।

इस बीच राभा लोग अपने गांव से नीचे उतर आए थे। वे एक-एक, दो-दो होकर आए थे। उनमें से एक शहाबुद्दीन के पास आ खड़ा हुआ और बोला, "वह

अब नहीं रही। वह इस जगह से हटती ही न थी। आज उसके बाप ने उसके बर्तन एक ग्वाले को बेच डाले।"

उनमें से एक रक्षक ने पूछा, "कैसे मरी वह ?"

राभा के निवासियों ने कोई उत्तर नहीं दिया। उनकी नजरें जमीन में धंसती जा रही थीं। वे जैसे जमीन के भीतर दूर तक पहुंच जाना चाहती थीं।

एकाएक शहाबुद्दीन की नजर आंतें निकली गद्दियों तथा हाथी के गले की रस्सियों और पट्टों से हटकर निमाई राभा द्वारा पहने जाने वाले ब्लाऊज के एक टुकड़े पर पड़ी। देखते ही जैसे उसका सर घूम गया। उसने झपटकर ब्लाउज के उस टुकड़े को जमीन से उठा लिया। उसका गला भर्राया हुआ था और उसके मुंह से कुछ अस्फुट शब्द निकल रहे थे। अब उसके होठों से लार बहने लगी थी और उसकी आंखें उसके सर से बाहर आने को थीं।

शहाबुद्दीन को उस भीड़ में एकाएक कृष्णकांत की आवाज सुनाई दी। उसने मुड़कर देखा। कृष्णकांत ही था। वह थोड़ा आगे आया और शहाबुद्दीन के सामने खड़ा हो गया।

...लेकिन कृष्णकांत को पहचान पाना अब असंभव हो रहा था। उसकी कलाई पर घड़ी थी, उसकी धोती बगुले के परों की तरह सफेद थी, और उसके कुर्ते के सोने के बटन चमचमा रहे थे। वह दरभंगा और दीनाजपुर के व्यापारियों की वेशभूषा में था।

शहाबुद्दीन के कंधे पर हाथ रखते हुए वह बोला, "मैं पट्टेदार की पगड़ी ढूंढता-ढूंढता यहां आया था। वह पिछले दिनों मौज-मस्ती करते समय उसे यहीं छोड़ गया था।"

परसू का कुआं

जब सभी दोस्त चलते बने, तो परसू अपने को लाचार महसूस करने लगा। उसकी समझ में यह नहीं आ रहा था कि वह करे क्या ! चौराहे के निकट, बड़े अंजीर के पेड़ के नीचे, लखीमपुर के सभी बेरोजगार युवक हर रोज इकट्ठे होते थे और घंटों बतियाते रहते थे। परसू भी उन्हीं में से एक था। कोई नहीं जानता था कि वे कहां चले गए हैं। पर परसू जानता था। वे चाहते थे कि परसू भी उनके साथ चले। लेकिन अगर वह चला जाता तो उसके बीमार भाई की देखभाल करने वाली उसकी मां की कौन मदद करता ? परसू उनके साथ नहीं गया इसका एक कारण यह भी था। वे चाहते थे कि वह भी उनके साथ गोला-बारूद का इस्तेमाल सीखे। उसे उस सड़क के बारे में भी जानकारी दे दी गई थी जिस पर से उन्हें जंगल में से गुजरना था। उन्होंने उसे बताया था कि यदि वह उनका साथ देता है तो उसे पैसे की बिलकुल कमी नहीं रहेगी। उसके बीमार भाई के इलाज में भी कोई रुकावट न आती, क्योंकि उसके परिवार की देखरेख के लिए उन्हें काफी पैसा मिल जाता। इसके बावजूद परसू ने उनका साथ नहीं दिया और इसका नतीजा यह हुआ कि मित्र-मंडली में उसे कायर कहा जाने लगा।

वैसे पढ़ाई में भी परसू कोई खास अच्छा नहीं था। पर दोस्तों का साथ न देने का यह कोई कारण नहीं था। मेहनत तो उसने बहुत की थी, फिर भी वह दसवीं पास नहीं कर पाया था। दसवीं की परीक्षा देने के बाद उसने नौकरी पाने की जी-तोड़ कोशिश की थी, पर वह असफल ही रहा था। किसी ने उससे कहा था कि वह छोटे-छोटे ठेके ले। इससे उसका गुजारा तो ठीक से चलेगा ही, हो सकता है कि थोड़ा-बहुत पैसा भी वह जुटा ले।

परसू ने अब विभिन्न सरकारी महकमों के नोटिस-बोर्डों पर नजर दौड़ानी शुरू कर दी थी। ये महकमे थे लोक निर्माण, रेशम उत्पादन, इत्यादि। उन लोगों के टेंडरों के संबंध में जिज्ञासु रहने लगा। वह सेना को तरह-तरह का माल उपलब्ध कराने के लिए भी छोटे-छोटे ठेकों पर नजर रखता। केवल लखीमपुर में ही नहीं, गुवाहाटी जैसे दूर के बड़े शहर में भी।

परसू की शक्ल-सूरत ऐसी नहीं थी कि किसी का ध्यान उसकी ओर जाए।

वह लंबा, पतला और काले रंग का था। बाल उसके घुंघराले थे और आंखें बड़ी-बड़ी थीं। उन आंखों में एक प्रकार की कोमलता थी जो किसी को भी निरस्त्र कर सकती थी। जिस समय वह गुवाहाटी में था, उसे अपने एक मित्र से बिना कैरियर वाली एक पुरानी साइकिल मिल गई थी। उसकी कमीज की आस्तीनें फटी हुई थीं। लगातार पहनने के कारण उसकी रबड़ की चप्पलों की एड़ियां घिस चुकी थीं और उसके पास इतने पैसे भी न थे कि वह नया जोड़ा खरीद पाता। संक्षेप में, वह जीर्ण-शीर्ण अवस्था में था।

जिन दिनों वह गुवाहाटी में था, उसके सुनने में आया कि रेशम के कीड़े पालने वाला विभाग छोटे-छोटे ठेके देता रहता है और उनके लिए वह कोशिश कर सकता है। जैसे ही उसने यह सुना, वह कार्यपालक अभियंता के कार्यालय में जा पहुंचा और वहां पूछ-ताछ करने के लिए घंटों इंतजार करता रहा। गरमी भी बला की थी और बारिश भी हो जाती थी। पर उसने किसी की परवाह नहीं की, वहां डटा रहा। अब पान वाले भी उसे पहचानने लगे थे। उस कार्यालय के अधिकारियों और कर्मचारियों के लिए भी वह अपरिचित नहीं रहा था। वे उस पर हंसते और उसका मजाक उड़ाते।

उस कार्यालय में तीन व्यक्तियों ने टेंडर भरे थे। उन्हें रेशम के कीड़ों के लिए जाली के घर बनाने थे। इस काम के लिए ग्यारह हजार रुपए की राशि स्वीकृत हुई थी, पर काम सात हजार रुपये में ही पूरा हो गया था और इस तरह चार हजार रुपये बच गए थे। इस तथ्य की खबर जैसे ही कुछ बेरोजगार युवकों को लगी, वे रेशम के कीड़े पालने वाले दफ्तर में चले आए। वे यह जानना चाहते थे कि क्या उनका विभाग बचे पैसे से कोई छोटा-मोटा काम करवाना चाहेगा। ये सब लोग जरूरतमंद थे। सभी गरीब थे। उनके चिथड़े हुए कपड़े तथा फटे जूते इसकी गवाही दे रहे थे। आक्रामकता का तो उनमें नामोनिशान तक न था। वे तो एक-दूसरे की तरफ ठीक से देख भी नहीं पाते थे। हां, इत्तफाक से यदि उनका आमना-सामना हो जाता तो वे बड़े-बड़े ठेकों की बात करते और कहते कि इस छोटे ठेके में उनकी कोई रुचि नहीं है—क्या मिलेगा उन्हें इससे ? ज्यादा-से-ज्यादा दस हजार ? और इससे कम भी तो हो सकता है।

जून का महीना था और गरमी पूरे जोरों पर थी। परसू कार्यपालक अभियंता के कार्यालय के सामने बैठा था। वह चाहता था कि उसे ठीक-ठीक उत्तर मिल जाए। वह पीपल के पेड़ के साए में बैठा था और उसकी खस्ताहाल साइकिल उसके पास पड़ी थी। उसे पता चल गया था कि एक खास वक्त पर अभियंता महोदय अपने हाथ-पांव फैलाने अपने कक्ष से बाहर आते हैं।

वह पसीने-पसीने हो रहा था। उसका गला सूखा हुआ था। सुबह से उसे खाने को कुछ नहीं मिला था। अब तक कार्यपालक अभियंता का कार्यालय लोगों

से खचाखच भर गया था। उनमें से कुछ मायूस होकर लौट गए थे और कुछ की उम्मीद बंधी रही। कुछ ऐसे भी थे जिन्हें केवल इंतजार था, निश्चित रूप से कुछ भी नहीं कह सकते थे कि उन्हें ठेका मिलेगा या नहीं।

दोपहर के दो बज रहे थे। परसू अब भी वैसे ही झुलसा देने वाली गरमी में खड़ा था। उसे लगा जैसे कि उसके शरीर की समूची शक्ति उलीच ली गई है। साहब की अपने कक्ष से बाहर आने की कोई उम्मीद नहीं दिखती थी।

पास से गुजरते हुए एक व्यक्ति ने उससे पूछा, "वक्त क्या होगा ?"

" दो बज चुके हैं। आज साहब अपने कमरे से बाहर नहीं आएंगे क्या ?"

परसू ने अपनी कमीज की आस्तीनों से अपने माथे का पसीना पोंछा। साहब अपनी कुर्सी पर उसी तरह विराजमान थे और दफ्तर का काम निपटा रहे थे। परसू की आंखों में वह इतना रच-बस गए थे कि वह उनके जूतों से ही उन्हें पहचान सकता था। उनके सर के बाल नदारद थे, लेकिन उनकी काठी मजबूत थी। जहां वह खड़ा था, वहां से वह उनकी मोटी नाक का बड़ा-सा मस्सा भी देख सकता था।

अब वह एकाएक चीख-सा पड़ा। "साहब बाहर आ रहे हैं। वे अपने कमरे से बाहर आ रहे हैं।" उसने उन्हें अपनी कुर्सी से उठते देख लिया था।

वह उनकी ओर दौड़ता-सा बढ़ा। वह इस कद्र पस्त हो रहा था कि उसे यह भी नहीं पता था कि उसे साहब से क्या कहना है, हालांकि उसे काम की जरूरत भी थी और काम उसे केवल इन्हीं से मिल सकता था। आखिर पैसा तो काम करने से ही मिलेगा।

दुहरी ठुड्डी वाले मोटे साहब की समझ में नहीं आ रहा था कि मामला क्या हो सकता है। वह जोर से बोले, "माजरा क्या है ? मैं क्या कर सकता हूं तुम्हारे लिए ?"

"हुजूर, मेरे सुनने में आया है कि आपके पास जो पैसा बचा है, उसमें कुछ और मिलाकर आप कोई और काम करवाना चाहते हैं।"

"कौन-सा पैसा बचा है ?" साहब ने रूखेपन से पूछा। बात उनकी समझ में नहीं आ रही थी।

"हुजूर, कीटों के लिए जाली के घर बनवाने के बाद जो पैसा बचा था।"

"वाह ! तो तुम्हें पता चल गया है कि हम लखीमपुर में कुआं खुदवाना चाहते हैं ? पर अभी तो हमने उसके बारे में कोई फैसला नहीं किया है। सुबह से ही लोग उसके बारे में पूछताछ कर रहे हैं।"

परसू मामला हाथ से जाने देना नहीं चाहता था। उसने मिन्नत-समाजत करनी शुरू कर दी, यहां तक कि वह भिखमंगों की तरह गिड़गिड़ाने लगा। "हुजूर, हम बहुत गरीब हैं। हम लखीमपुर के निकट एक गांव में रहते हैं। मैं अपने भाई की

कैमोथेरापी (रसोचिकित्सा) करवाना चाहता हूं। वह बीमार है। मैं बड़ी मुश्किल से उसे गुवाहाटी के मैडिकल कालेज के अस्पताल तक ला पाया हूं।" वह अपने भाई की बीमारी को लेकर इतना दुखी था कि वह बड़ी मुश्किल से अपने आंसू रोक पाया।

भारी डील-डौल वाला वह अधिकारी कुछ कदम पीछे हट गया। वह परसू जैसे लोगों से कोई संपर्क नहीं रखना चाहता था, वापस अपने कमरे में जाना चाहता था। इसलिए उसकी भौंएं चढ़ गईं और उसने रूखेपन से कहा, "अपना नाम बताओ। एक महीने ज्यादा हो गया, मैं तुम्हें निरंतर अपने कमरे के बाहर मंडराता देख रहा हूं। क्या नाम है तुम्हारा ?"

"परसू पटोर।"

"बहुत ही गरीब हो न तुम ? अपनी साइकिल की मरम्मत तक नहीं करवा पाए और उस पर लखीमपुर में कुआं खोदने का ठेका लेना चाहते हो ?"

"हुजूर, कुछ मत पूछिए। बुरी हालत है मेरी। मेरा भाई सख्त बीमार है। उसके इलाज पर ढेरों पैसा खर्च आएगा। कृपानिधान, किसी भी तरह मेरी मदद कीजिए।"

"मैं तुम्हारी परेशानी समझ रहा हूं। पर तुम तो, लगता है, ऐसी हालत में भी नहीं हो कि जमानती रकम दे सको। आओ, मैं तुम्हें साफ-साफ बता दूं कि तुम्हें क्या-क्या करना है। इमारतें खड़ी करने की दर 1991 में बढ़ा दी गई थी। पर सैनिटरी से जुड़े या जल आपूर्ति संबंधी कामों की दर वही पुरानी है, 1984 वाली। अगर तुम्हें यह काम मिला भी, तो वही पुरानी दर पर मिलेगा। हां, लेकिन इस समय मैं तुम्हें निश्चित रूप से कुछ नहीं बता सकता। मैं तुम्हें यह भी नहीं बता सकता कि हम टेंडर कब मांगेंगे..."

जब परसू अधिकारी की बात पूरे मनोयोग से सुन रहा था, उस समय वहां कुछ और लोग भी थे जो ऐसे ही किसी ठेके के इच्छुक थे। परसू ने केवल यहीं अपना दम नहीं लगाया था, वह और भी कई कार्यालयों में गया था ताकि उसे इमारत की मरम्मत या उससे मिलता-जुलता कोई भी काम मिल जाए। इसके लिए उसने सभी औपचारिकताएं भी निभाई थीं और छपे हुए फार्मों पर रसीदी टिकट लगाकर आवेदन कर रखा था। पर वह तो दूसरी कहानी है, यहां बताने की जरूरत महसूस नहीं हो रही।

परसू को अपने कानों पर विश्वास नहीं हुआ जब उसने सुना कि लखीमपुर में कुआं खोदने का ठेका उसी को मिला है। अपने सहपाठियों की निगाह में वह कुछ भी नहीं था। उनका तो यही कहना था कि वह जिंदगी में कुछ भी नहीं कर पाएगा। और भी कई लोगों की यही राय थी। वे कहते, वह बिलकुल बेकार है। उसके दो मित्र, ज्योति और पवन, असम के एक गैर-कानूनी राजनीतिक संगठन,

संयुक्त मुक्ति मोर्चा में, जो सशस्त्र और भारत के खिलाफ है, शामिल हो गए थे। जबकि परसू अपनी जगह ही बना रहा। मोर्चे में शामिल होने के उनके अपने कारण रहे होंगे, संभवतया वे मौजूदा हालात से परेशान हों। उन्हें इस बात से निराशा हुई कि परसू मोर्चे में शामिल नहीं हुआ। उन्हें लगा कि उसमें साहस की कमी है। वे सरायपुंग के भूमिगत शस्त्र प्रशिक्षण शिविर में चले गए थे। सुनने में यह भी आया कि वे सघन प्रशिक्षण के लिए म्यांमार के काचीन नाम के स्थल पर भी गए थे। जिस रास्ते से वे गए थे, वह घने जंगलों में से होकर जाता था। एक बार, केवल क्षण-भर के लिए, उसकी नजर पीपल के एक पेड़ के नीचे, अपने बचपन के दोस्त, भोला पर पड़ी थी। वह भी असम की मुक्ति के लिए किन्हीं भूमिगत संगठनों में जा मिला था। अनाज के खेतों की मेड़ों पर भरपूर उगने वाली लंबी-लंबी घास में छिपते-छिपते वह अपनी प्रेमिका, बकुल, के साथ मिलता था। हर किसी को बकुल और भोला के प्रेम का पता था। लखीमपुर जैसे छोटे-से कस्बे में यह बात किसी से छिपी न रह सकी।

हवा के चलने पर, लंबी-लंबी घास के बीचोंबीच, परसू ने दूर से ही बकुल के भरे-भरे बाजू और जंघाएं देखी थीं। उसकी पीठ पर छितराए लंबे काले बाल सर्प की तरह फन काढ़े दिखाई दे रहे थे। हवा में झूमती लंबी घास उसके कुमुदिनी समान धवल शरीर से आ रहे प्रकाश की धारा में नृत्य करती लग रही थी। ये प्रेमी-प्रेमिका वहां क्या कर रहे हैं ? क्या वे एक-दूसरे को चूम रहे हैं ? क्या वे एक-दूसरे को अपने आलिंगन में ले रहे हैं ? और यह भी तो हो सकता है कि वह उससे कह रहा हो कि वह भी उसकी तरह हथियार उठा ले ? पर यह कोई असाधारण बात तो न होगी। आखिर, उनके गांव की ही लड़की, पार्वती, ने काचीन में शस्त्र चलाने का प्रशिक्षण लिया ही था।

बकुल से परसू भी प्रेम करता था, पर उसकी इतनी हिम्मत नहीं हुई कि वह उस तक अपनी बात पहुंचा दे। उसका यह प्रेम मन में ही रहा, प्रतिदान न मिलने पर उसे टीसता रहा।

भोला की नजर जैसे ही परसू पर पड़ी, उसने अपने को बकुल की भुजाओं से मुक्त किया और चिल्लाया, 'ओ परसू, चल, चल तू मेरे साथ सरायपुंग के हमारे शिविर में। मेरी बात ध्यान से सुन, जब तक तू हममें शामिल नहीं होगा, तब तक तुम्हारी हालत नहीं सुधरेगी। हमेशा तू काम की तलाश में नंगे पांव मारा-मारा फिरेगा। गरीबों की हालत तब तक नहीं सुधरेगी जब तक कि उनके लिए जमकर कदम नहीं उठाया जाए। चल आ, आ, हमारे साथ चल। हमारे संघर्ष में हमारा साथ दे। गरीबों का उद्धार तभी हो पाएगा।''

परसू तेज कदमों से ऊंची, खुली भूमि की ओर बढ़ गया। वह भूमि नदी की रेत इत्यादि के जमा होने से बनी थी। वह अपने मित्र, भोला, से बचने की

कोशिश में था। वह भोला अपनी प्रेमिका को वहीं छोड़ उसकी ओर दौड़ा चला आया।

"तुम्हारे जैसा कोई युवक छोटे-से ठेके के लिए भीख मांगता हुआ दर-दर भटके, इसकी क्या जरूरत है ? मेरी तरह बंदूक क्यों नहीं उठाते ?" और फिर उसने अपनी बंदूक की चमकती नली परसू के हाथ में थमा दी।

"पकड़ो इसे, मेरे दोस्त !" भोला ने पूरा जोर लगाकर कहा था।

परसू को भोला की आकृति अब ठीक से दिख पाई थी। अब वह साफ देख रहा था कि उसकी टांगों पर बड़ी-बड़ी जोंकों के काटे के कई निशान हैं। जंगल के गंदले पानी और दलदल में से जब वह निकल रहा होगा उस समय इसे जोंक ने काटा होगा। उसकी ठुड्डी पर भी गहरा घाव था। वह उससे पूछ नहीं सका कि यह घाव कैसे हुआ ? यह उस समय हुआ होगा जब सेना की टुकड़ी से उसकी अचानक मुठभेड़ हो गई या उस समय जब वह बंदूक चलाना सीख रहा होगा ?

बहरहाल, परसू किसी कीमत पर भी भोला के साथ जाने को राजी नहीं हुआ, हालांकि उसके मित्रों ने उसे हर तरह से समझाया और उसे आश्वस्त करने की कोशिश की। उसकी मां अकेली उसके बीमार भाई की देख-भाल कैसे कर सकती थी ? वह तो इधर हर वक्त ठेके की खोज में ही लगा रहता था, इसलिए उसकी मां ही उसके भाई को इलाज के लिए गुवाहाटी लेकर गई थी। दामोदर, यानी उसका भाई, अब पहले से कुछ बेहतर था, पर उसके सर के बाल पूरी तरह झड़ चुके थे। इस वजह से वह काफी निराश हो गया था ! घर के एक कोने में बैठा-बैठा वह इसी के बारे में सोचता रहता। जीवन के प्रति उसकी रुचि खत्म हो चुकी थी। किसी से बात करना तो दूर, वह किसी की तरफ देखता तक नहीं था। अपने चंद-एक खेतों के धान को बेचकर उसकी मां को जो पैसा मिला था, उसे वह बेटे के इलाज पर खर्च कर चुकी थी। परसू का मामा इस कोशिश में था कि उन्हें लड़के के इलाज के लिए कुछ सरकारी सहायता मिल जाए। लेकिन अभी तक कुछ भी नतीजा सामने नहीं आया था। परसू के कंधों पर जो जिम्मेदारी आ पड़ी थी, उसे वह अच्छी तरह समझता था। इसलिए वह भोला की तरह अपने गांव को छोड़ नहीं सकता था।

उधर भोला अपनी तरह से परेशान था। उसकी समझ में नहीं आ रहा था कि परसू उसके साथ चलने को तैयार क्यों नहीं है ? आखिर, उसने अपनी नफरत उड़ेलते हुए कहा, "तो पटकते रहो हाथ-पांव ऐसे ही गुलामों की तरह।" उसने उसे और भी बुरा-भला कहा और वापस लंबी घास की ओर बढ़ गया। बकुल वहां उसका इंतजार कर रही थी।

2

कार्यपालक अभियंता के कार्यालय में परसू की मुलाकात चक्रधर मंडल से हो गई। मंडल काफी लंबा-चौड़ा, सुडौल व्यक्ति था। वह हमेशा अपनी शक्लोसूरत का खास ख्याल रखता, कपड़े पहनने में तो और भी एहतियात बरतता था। वह ढीले-ढाले कुर्ते पहनता और उस समय के फैशन के मुताबिक अपनी धोती की लांग अपने कुर्ते की जेब में खोंसे रहता। पांवों में वह कपड़े के जूते पहनता था। रंग उसका सांवला था, मूंछें घनी थीं और नाक तीखी थी।

परसू को जैसे ही उसने देखा, वह बड़े उत्साह से उससे मिलने के लिए आगे बढ़ा। "अरे परसू, तुम भाग्यवान हो कि तुम्हें यह ठेका मिला। लेकिन एक बात का ख्याल रखना, यह लोक निर्माण विभाग का ठेका नहीं है, रेशम उत्पादन विभाग का ठेका है। इसमें तुम्हें ज्यादा पैसा नहीं मिलेगा। अगर यह लोक निर्माण विभाग का ठेका होता, तो तुम्हें अच्छी प्राप्ति होती—पैसे की भी और सामान की भी। लेकिन रेशम उत्पादन विभाग के पास ज्यादा पैसा नहीं है, न ही पैसा अदायगी का तरीका ढंग का है। कोई सामान तो तुम्हें ये उपलब्ध कराएंगे नहीं। और जिस तरह का तुम्हें काम मिला है, उसकी दर भी 1984 से वही-की-वही है। इसलिए पुरानी दर पर ही भुगतान होगा। क्या कुआं खोदने का तुम्हारा यह काम गोगामुख में फार्म हाउस की मरम्मत के काम के अंतर्गत नहीं माना जाएगा ?"

मंडल जैसे सब कुछ जानता था, आगे बोला, "परसू, तुम असंभव को संभव करने की कोशिश में लगे हो। इस तरह के काम के लिए तुम्हारे हाथ में फौरन छह-सात हजार रुपया होना चाहिए। तुम्हें रिग के अलावा और भी हर तरह के सामान की जरूरत पड़ेगी। इस काम में तुम्हें मजदूरों की मदद भी चाहिए। इसके लिए तुम्हें वहां मिशिंग जनजाति पर निर्भर रहना होगा और उनकी उजरत का हर रोज भुगतान करना होगा। वे बेहद गरीब हैं। इसलिए तुम एक दिन के लिए भी उनकी उजरत नहीं रोक सकते। साथ ही तुम्हें उनके खाने की व्यवस्था भी करनी होगी।"

परसू अपने हाथ जोड़ते हुए तथा चेहरे पर लाचारी का भाव लाते हुए गिड़गिड़ाया, "आप जानते ही हैं कि हम बहुत परेशानी में हैं। मेरा भाई सख्त बीमार है और पिताजी का अचानक देहांत हो जाने से हमें हर प्रकार की दिक्कतों का सामना करना पड़ा है। इस वक्त हम अपनी जमीन खुद नहीं बो सकते, इसलिए मजबूर होकर हमें उसे बटाईगीरों को देनी पड़ी। उपज का आधा हिस्सा वे ही ले जाते हैं...।"

मंडल में इतना धैर्य नहीं दिखता था कि वह परसू के परिवार के सामने आई परेशानियों के बारे में विस्तार से सुने। इसलिए उसने उसकी बात काटते

हुए कहा, "मैं जानता हूं कि तुम्हारा परिवार इस समय संकट से गुजर रहा है। लेकिन तुमलोग हमेशा इतने गरीब नहीं रहे और अब भी तुम्हारी मां के पास कुछ जेवर तो बचे ही होंगे।"

इस पर परसू फट पड़ा, "नहीं, नहीं, मेरी मां के पास अब कोई जेवर नहीं बचा है। हमें अपने भाई के इलाज पर इतना खर्च करना पड़ा कि हम कंगाल हो गए हैं। अब हम आपकी सहायता पर निर्भर हैं। आपने कइयों की सहायता की है।"

मंडल ने अपने घुंघराले बालों के बीच आहिस्ता से अपनी अंगुलियां फिराईं। बालों के ये घूंघर उसने बड़े यत्न से एक सैलून में बनवाए थे। बोला, "मैं डिबोरू के रहमत पठान से तुम्हें कुछ रकम उधार देने के लिए कह सकता हूं। लेकिन जब तक हम उसके पास कोई जेवर गिरवी नहीं रखते, वह मानेगा नहीं।"

"ठीक है," परसू ने कहा, "मैं अपनी मां से पूछूंगा।"

"हां, जेवर की अगर व्यवस्था हो जाए, तो मैं तुम्हें विश्वास दिलाता हूं, तुम्हें कर्ज मिल जाएगा।"

परसू मंडल के साथ रहमत पठान से मिला। रहमत का रसूख दूर-दूर तक था—यानी, जुनाई, लखीमपुर, गोगामुख और डिबारू नदी के किनारों पर बसी बस्तियों में। अपना हुक्म मनवाने और पैसे की वसूली के लिए उसने कई हट्टे-कट्टे मुस्टंडे पाल रखे थे। यह पैसा वह बहुत कम समय के लिए सूद पर उधार देता था।

देखारी नाम के छोटे-से कस्बे के एक तालाब के किनारे कुछ तंबू गड़े हुए थे। एक तंबू के बाहर रहमत पठान लकड़ी की एक कुर्सी डाले बैठा था। उसके पास ही, जमीन पर, उसका एक वफादार सेवक बैठा था। वह देखने में काफी तगड़ा था और अपनी टांगें मोड़कर पुट्ठों के बल बैठा हुआ था। अफगानिस्तान से आए उस पठान ने, जिसे इधर के लोग अधिकतर काबुलीवाला कहते थे, असमिया भाषा पर अच्छा अधिकार प्राप्त कर लिया था। 'काबुलीवाला' का शाब्दिक अर्थ वह व्यक्ति है जो काबुल, यानी अफगानिस्तान से आया हो। पर उसे पठान भी कहा जाता था, क्योंकि वह उसी नस्ल का था। नाम तो उसका रहमत खां था, पर देहात के लोगों ने उसे कई नाम दे रखे थे।

पठान का रंग गोरा था, पर उसमें कुछ लाली मिली हुई थी, इसलिए वह पके गैंबोज फल की तरह दिखाई देता था। कद था उसका छह फुट, शरीर पेशीदार और उसकी बिना बनाई दाढ़ी लाल-भूरे रंग की थी। परसू पहचान न सका कि काबुलीवाला की दाढ़ी रंगी हुई है या यह उसका स्वाभाविक रंग है। आंखें उसकी नीली थीं, बरौनियां लगभग लाल थीं, साथ ही गाल पर काला मस्सा था और चेहरा सिकुड़ा हुआ था। परसू ने ऐसा गोरा रंग पहले कभी नहीं देखा था। वह अपने ध्यान से तभी बाहर आया जब मंडल ने पुकारकर कहा, "परसू, पठान को बालियां दिखाओ।"

लेकिन काबुलीवाला परसू की शक्लोसूरत से प्रभावित नहीं हुआ और न ही उसने बालियों के प्रति कोई उत्सुकता दिखाई। "अरे, यह इतना दुबला-पतला छोकरा क्या करेगा ? इसके हाथ-पांव में तो बिलकुल जान नहीं है। कैसे दूं पैसा इसे उधार ?"

मंडल ने परसू की वकालत की, "रहमत भाई, आपको ऐसा नहीं बोलना चाहिए। पहले बालियां ठीक से देख लो, फिर कर्जा देने के बारे में फैसला करना।"

रहमत पठान का सहायक परसू पर हिकारत से हंसा। परसू की हिम्मत जाती रही। क्या वह वाकई इतना कमजोर दिखता है ?

पठान तो वाकई उस जेवर को बिलकुल नहीं देखना चाहता था। बोला, "डिबारू और देखारी के किनारे-किनारे घूमते हुए मैंने कई तरह के असमिया जेवरात देखे हैं। मुझे अब तुम कुछ भी नया नहीं दिखा सकते।"

लेकिन चक्रधर मंडल उनलोगों में से नहीं था जो आसानी से हार मान लेते हैं। वह अपनी बात पर अड़ा रहा, "पठान भाई, आपने गौर किया होगा कि असम के पुराने जेवर असली सोने के होते हैं। आज बाजार में जैसे जेवर मिलते हैं, वे वैसे चौदह कैरट या अठारह कैरट के नहीं होते। राजा रुद्र सिंह के जमाने में एक खास जाति के अनेक असमिया परिवार अच्छे जौहरी बनने के लिए वाराणसी गए। कुछ समय पहले कुछ तथाकथित निचली जाति के लोगों ने भी जौहरी का हुनर सीख लिया ताकि उन्हें ऊंची जाति के जौहरी कहलाने का हक मिले।"

रहमत पठान हंसने लगा। उसके अधिकांश दांत काले पड़ चुके थे, लेकिन उनमें एक दांत ऐसा था जिस पर उसने सोने का पतरा चढ़वा रखा था। वह चमक रहा था। परसू ने जब वह दांत देखा तो वह दंग रह गया। उसकी जेब में अपनी मां की बालियां पड़ी थीं जिन्हें उसने एक रुमाल में बड़े सलीके से बांध रखा था। उसकी मां ने उन्हें उसे सौंपने में एक क्षण भी नहीं लगाया था, हालांकि उसे उन्हें सौंपते समय बहुत बुरा लगा होगा।

गिरवी के लिए अपनी बालियां देते समय उसकी मां ने कहा था, "परसू, मुझे तुम पर पूरा भरोसा है। मुझे विश्वास है कि तुम समय पर पूरी रकम चुकता करके इन बालियों को छुड़वा लोगे।"

परसू उस समय पसोपेश में पड़ा हुआ था। वह अपनी मां के जेवर गिरवी नहीं रखना चाहता था। इसलिए वह बोला, "मां, दामोदर को कैमोथेरापी के लिए गुवाहाटी मेडिकल कालिज में जाना ही होगा। अगर मैं उस समय तक अपना काम पूरा न कर पाया तो उसके इलाज के लिए पैसे कहां से आएंगे ?"

मां ने तब उसे झिड़का और कहा कि वह उस हालत में वह सब करेगी जो पेट भरने के लिए उसने पहले किया था, "मैं फिर जड़ी-बूटियां खोजूंगी और उन्हें बाजार में बेचकर थोड़ा-बहुत कमाने की कोशिश करूंगी।"

पर परसू ने मां की बात पर ध्यान नहीं दिया था, "न, न, मां ! मैं अब

तुम्हें जंगल में जड़ी-बूटियों की तलाश में जाने नहीं दूंगा। पेचिश के लिए अब सरकारी डिस्पेंसरी में आसानी से दवाइयां मिल जाती हैं। लोगों को वहीं जाने दो। तुममें अब इतनी ताकत नहीं है कि तुम जड़ी-बूटियों को पहले पीसो और फिर उनमें से सत्तू निकालो। अब तो कुएं से पानी की बाल्टी खींचते वक्त तुम्हारे हाथ-पांव कांपते हैं। अब इस उम्र में इतना खपने की जरूरत नहीं है।"

परसू की मां की आंखों में आंसू आ गए थे। उसे उसने छिपाने की कोशिश की। वह समझती थी कि अब उससे ज्यादा मेहनत नहीं होगी, बल्कि उसे आराम की जरूरत है। लेकिन जब बेटा इतना बीमार हो, तब मां को कैसे चैन पड़ सकता है ? दूसरे, उसे उसके इलाज के लिए ढेर-सारे पैसे की भी तो जरूरत थी।

पठान के कपड़ों से तंबाकू की बासी गंध आ रही थी जो परसू की नाक को बुरी तरह महसूस हो रही थी। परसू को लगा कि यह व्यक्ति बिलकुल दुर्दांत होगा, दुर्दांत और हृदयहीन, शार्क मछली की तरह।

पर न-नुकर करते हुए भी पठान मंडल की बात मान ही गया। वह बोला, "कौन जाने इस बालियों से एक हजार रुपया भी वसूल होगा कि नहीं और तुम पेशगी सात हजार रुपए चाहते हो ! मैं तुम्हें केवल पांच हजार रुपए दूंगा और उसी दर पर सूद वसूल करूंगा जिस पर दूसरों से करता हूं। तुम्हें डेढ़ महीने में मेरा पैसा वापस करना होगा। बाद में बहाने न बनाना। मैं एक नहीं सुनूंगा। मुझसे यह नहीं कहना कि तुम्हारे बिलों का अभी भुगतान नहीं हुआ।"

मंडल ने पठान को भरोसा दिलाया और कहा, "चिंता मत करो। जैसे ही काम पूरा होगा, हम बिल पास करवा लेंगे। अधिकारियों से मेरी अच्छी पटती है और कार्यपालक अभियंता को तो मैं खूब अच्छी तरह जानता हूं। इसलिए बिल पास करवाना बिलकुल मुश्किल नहीं होगा।"

वापसी में वे जंगल में से लंबे-लंबे साल के पेड़ों के नीचे से होते हुए आए। वैसे तो परसू पर भलाऊ के लंबे पेड़ की चोटी पर बैठी फाख्ताओं का जादू काम कर रहा था, पर उसके मन में वही सब कुछ चल रहा था जो उसने पठान के शामियाने में देखा और सुना था। उसकी मां का तो उसके बारे में यही विचार था कि शायद वह दूसरों से काम निकालने में उतना चतुर नहीं है, या शायद वह दूसरों से अपनी भावनाएं छिपा नहीं सकता। इसीलिए वह बचपन में उससे बराबर कहती रहती कि वह और होशियार बने और यह भी कि जो तुम कहते हो वह उतना महत्वपूर्ण नहीं, यह कैसे कहते हो—वह महत्वपूर्ण है। परसू उस समय अपनी मां के कथन का मर्म जान नहीं पाया था, लेकिन अब जबकि वह मंडल को पठान से बात करते देख रहा था, वह मर्म उसकी पकड़ में आ गया था। लेकिन क्या वह कभी भी वैसी शैली अख्तियार कर पाएगा ? असंभव !

लखीमपुर में मंडल ने परसू के लिए स्थानीय कामगार ढूंढ़ने में भरपूर सहायता की। दूसरे कामों में भी उसने उसकी उतनी ही सहायता की। उन्हें दो तो मिशिंग जनजाति के कामगार मिले और चार बिहार के। प्रत्येक कामगार की दिहाड़ी चालीस रुपए तय हुई।

परसू ने यह भी निर्णय लिया कि वह हर कामगार के लिए खुद ही खाना तैयार करेगा। इससे कुछ रकम तो बचेगी ही। उसके भाई की हालत तो ऐसी थी कि वह मुश्किल से ही बिस्तर से हिल पाता था—हर वक्त उसकी मां को उसकी तीमारदारी करनी पड़ती थी। घर में परसू अपनी मां का पूरी तरह हाथ बंटाता रहा, ज्यादातर खाना वह ही बनाता। इसी में वह खाना बनाना भी सीख गया।

कुआं खोदने के लिए रेशम उत्पादन विभाग के ओवरसियर द्वारा एक भूखंड चिह्नित कर दिया गया। वह भूखंड लाइमेकोरी के उत्तर में, जंगल के एक कोने में स्थित था और वहां चोम के पेड़ भरे पड़े थे। काम शुरू करने से पहले परसू जल देवता की पूजा करने के लिए विनत भाव से उस भूखंड की ओर बढ़ा। कामगार लोग उसके पीछे-पीछे हो लिए। वैसे तो वह साफ-सुथरी कमीज-पाजामा पहने हुए था, पर उसकी रबड़ की चप्पल फटी हुई थी।

कामगारों को खोज निकालना कोई आसान काम नहीं था। इसलिए वह उन्हें खोजते-खोजते हलकान हो गया था। पतला शरीर होने के कारण पाजामा और कमीज उस पर झूल रहे थे। दरअसल, वह इस कदर दुबला चुका था कि उसके गालों की हड्डियां उभर आई थीं। उसके बाल बिखरे हुए थे। वैसे भी उसने एक अर्से से बाल नहीं कटवाए थे जिसकी वजह से वे उसकी गर्दन को ढकने लगे थे। जल देवता को भेंट चढ़ाने के लिए वह अपने सर पर चनों से भरी टोकरी उठाकर लाया था। साथ में वह अगरबत्ती का एक पैकट भी लेता आया था।

उसने दूर से ही देख लिया था कि जिस स्थल पर कुएं की खुदाई शुरू होनी थी, वहां पहले से ही कुछ लोग जुटे हुए थे।

स्थानीय जनजाति के कामगारों ने कहा, "जो चने तुम जल देवता को चढ़ाओगे, उन्हें खाने के लिए गांव के बच्चे यहां चले आए हैं। उन्हें पता है कि काम शुरू होने से पहले इस तरह की पूजा की ही जाती है।"

लेकिन जब वे उस स्थल के निकट पहुंचे तो परसू यह देखकर हैरान रह गया कि वहां बच्चे ही नहीं थे, बड़े लोग भी थे और उनके हाथों में लाठियां थीं। उस भीड़ में सभी तरह के लोग थे। कुछ लंब-तड़ंग थे, कुछ मझोले कद के थे और कुछ नाटे थे। फिर कुछ मोटे थे, कुछ दुबले थे, कुछ केवल बनियान पहने हुए थे और कुछ नंगे बदन थे। हाथों में लाठियां लेकर ये लोग क्यों आए हैं ? क्या माजरा हो सकता है यह ? परसू को लगा कि कुछ खतरा है। उसके साथ जो लोग गैंती-फावड़े लेकर आए थे, वे वहीं-के-वहीं रुक गए।

जब परसू और उसके कामगार उस स्थल से कोई तीस गज की दूरी पर थे, तो वे भीड़ के शोर को आसानी से सुन सकते थे। वे यह भी समझ पा रहे थे कि वे क्या कह रहे हैं।

"इस भूमि के पास भी आने की जुर्रत न करना। यह बृकोदर तथा सहोदर नाम के दो भाइयों की है।"

दरअसल, रेशम उत्पादन विभाग वालों ने वहां अपने फार्म की ठीक से हदबंदी नहीं की थी। इसलिए गांव के लोगों ने मामला निपटाने के लिए अदालत का दरवाजा खटखटाया था। वे कह रहे थे, "रेशम के महकमे वालों के फार्म की हदबंदी अभी होनी है। मामला कचहरी में है। इसलिए हम तुम्हें कुआं खोदने नहीं देंगे।"

उनकी आवाज उस दूरी से भी साफ सुनाई दे रही थी। परसू के पांव वहीं जम गए। वह वहां बुत बना खड़ा रहा। उसकी बुद्धि जाती रही। वैसे भी उसके स्वभाव में कुछ-कुछ भीरुपन था और हैरानी की कोई गुंजाइश न थी।

उसके साथ आए उसी जनजाति के कामगारों ने कहा, "आगे बढ़ो। हम पीछे नहीं हटेंगे। हम तुम्हारे साथ हैं।"

परसू अब भी साहस नहीं जुटा पा रहा था। भीड़ की आवाज बहुत साफ थी, "आओ। चले आओ। हम कुआं खोदकर तुम्हें उसी में दफना देंगे।"

जब वे लोग परसू की ओर थोड़ा आगे बढ़े तो वह घबरा गया और पत्थर खाई लोमड़ी की तरह पीछे की ओर भागने लगा। उसके साथ उसके कामगार भी भाग खड़े हुए। वे फिजूल में झगड़ा मोल लेना नहीं चाहते थे।

लेकिन परसू की यातना यहीं खत्म नहीं हुई। जैसे मधुमक्खियों के छत्ते को छेड़ने वाले व्यक्ति को मधुमक्खियां छोड़ती नहीं, उसी प्रकार गांव के बच्चे भी उसके पीछे लग गए। वे जोर-जोर से चिल्ला रहे थे, "चने की टोकरी यहीं छोड़कर जाओ, चने की टोकरी यहीं छोड़कर जाओ।"

जब परसू ने चने वाली टोकरी वहीं जमीन पर रख दी, तो वे उस पर ऐसे टूटे जैसे मक्खियां पके आम पर टूटती हैं और पूरे-के-पूरे चने झटपट हड़प गए।

3

ओवरसियर दो दिन के बाद फिर आया और चोम के पेड़ों के जंगल की पश्चिमी दिशा में जमीन पर निशान लगाकर चला गया।

इस बार परसू ने शुभ दिन का पता लगवाया, गले में गेंदे के पीले फूलों की माला पहनी और खुदाई शुरू करने से पहले जल देवता की पूरे मनोयोग से पूजा की। गांव के बच्चे फिर जुटे और देवता को चढ़ाए गए चनों को देखते-ही-

देखते खा गए। कामगारों ने भी इस पूजा-अर्चना में भाग लिया और फिर अपने काम में लग गए। उनके पास रिग (कूप खनन संयंत्र) तैयार-बर-तैयार थे। उन्हें कुएं के भीतर एक-दूसरे के ऊपर रखकर अंदर की ओर कर देना था। वहां पूरी शांति थी। कहीं से किसी प्रकार की रुकावट नहीं थी।

कामगारों ने बड़े जोशोखरोश से खुदाई का काम शुरू किया और प्रारंभिक अवस्था में यह काम चला भी सुगमता से। लेकिन जब दो फुट तक की खुदाई हो गई तो स्पष्ट हो गया कि वहां रेत और पत्थर के अलावा और कुछ नहीं है। रिगों को नीचे की ओर धकेलना असंभव हो रहा था।

अगले दिन कामगारों के साथ परसू गड्ढे के भीतर उतरा। उसने लंगोट पहन रखा था। लेकिन उसने देखा कि चाहे कितनी भी कोशिश करो, रिग अंदर नहीं जाएंगे। वे कई घंटों तक खुदाई करते रहे, लेकिन कामयाबी कतई हाथ नहीं लगी। उसने ऊपर की ओर देखा। रहमत पठान वहीं खड़ा था और उसकी ओर आंखें तरेरकर देख रहा था। परसू रेत और मिट्टी से सना हुआ था। वह कर भी क्या सकता था ? वह करे भी तो क्या करे ?

रहमत पठान बुरी तरह झल्ला रहा था, "इस तरह लगे रहोगे तो कुछ हाथ नहीं लगने वाला। नीचे चट्टानें-ही-चट्टानें होंगी। भूलो मत कि तुम्हें दी गई मियाद के भीतर मेरी रकम लौटानी है। इसलिए बाहर चले आओ, फौरन। उस गड्ढे में अपना वक्त बरबाद मत करो।"

अब तक लखीमपुर के कुछ लोग भी वहां इकट्ठे हो गए थे। वे भी पठान की बात की ही तसदीक कर रहे थे, "कई लोग यहां कुआं खोदने आए, पर उन्हें मुंहकी खानी पड़ी। अब इस छोकरे को देखो। यह कमाल कर दिखाना चाहता है।"

वे हंसते हुए उस पर पूरी हिकारत उड़ेल देना चाहते थे। उनके डंक-भरे शब्द और हंसी उसके कानों में बजे जा रही थी। इसके बावजूद उसने खुदाई नहीं रोकी। बीच-बीच में जब उसकी कुदाल किसी पत्थर से टकराती उसे ऐसे लगता जैसे वहां से आग फूट पड़ेगी।

दो दिन तक खुदाई चलती रही, लेकिन परसू तथा उसके कामगारों को गीली मिट्टी की परत का कोई चिह्न तक नहीं दिखा। गीली मिट्टी से यह आभास हो सकता था कि यहां नीचे पानी है।

गड्ढे में घुसे-घुसे परसू को पठान की कड़ी नजर का साफ पता चल रहा था। पर वह बराबर खोदे जा रहा था और यही जाहिर कर रहा था कि वह उसकी उस निगाह से बेखबर है।

उसने किसी को कहते सुना, "यह लड़का जरूर पागल है। छह रिग बरबाद कर चुका है और फिर भी खोदे जा रहा है।"

किसी और ने भी फब्ती कसी, "जरूर किसी प्रेतात्मा की छाया इस पर है।"

ऊपर से हर कोई चिल्ला रहा था, "लड़के, बाहर क्यों नहीं चले आते ? कुछ तो सोचो-समझो।"

लगातार खुदाई करते रहने से मिशिंग जनजाति के कामगार तथा बिहार से आए कामगार थकावट महसूस करने लगे थे। उनका धैर्य खत्म होता जा रहा था, क्योंकि रेत और पत्थर के सिवा कुछ हाथ नहीं लग रहा था।

अब तो तमाशा देखने वालों का धैर्य भी खत्म हो रहा था। वे भी परसू पर चिल्ला रहे थे, "गधे, बाहर आ जाओ !"

परसू से पहले वहां तीन और लोगों ने भी कुआं खोदने की कोशिश की थी, लेकिन सभी निराश होकर लौट गए थे। गांव वालों का कहना था कि इस स्थल पर जल देवता का श्राप है, इसलिए यहां कोई कुआं खोदने का प्रयास सफल नहीं हो सकता। हर कोई इसके बारे में जानता था। तब परसू ही क्यों अनभिज्ञ बना हुआ था ?

"आधी रात के समय तुम जल देवता को देखारी नदी में नाव चलाते और इस सूखे कुएं से पानी खींचते सुन सकते हो। केवल वही इस इलाके के सूखे कुओं से बालटियां भर-भरकर पानी निकाल सकता है और कोई नहीं। यहां के किसी व्यक्ति में इतनी शक्ति नहीं। पागल लड़के, किसी ने तुम्हें इसके बारे में बताया नहीं ? क्या तुम यहां बिलकुल अजनबी हो ? केवल बेवकूफ ही यहां कुआं खोदने की सोचेंगे।"

परसू सर से पांव तक रेत और मिट्टी से सना हुआ था। वह पलटकर चिल्लाते हुए बोला, "मैं खोदे जाऊंगा। मैं यहीं, लाइमेकूरी के इस इलाके में, कुआं खोदकर रहूंगा।"

अंदर घुसेड़ने की कोशिश में सात रिग बरबाद हो चुके थे। इसलिए बिहारी कामगार थके-मांदे बाहर आ गए। वे हांफ रहे थे। बाहर जमीन पर उस रेत और पत्थर के ढेर लगे थे जिन्हें खोदकर बाहर फेंका गया था।

गांव के बच्चों ने रेत से बड़े-बड़े गुंबद बनाने शुरू कर दिए। वे बंदरों की तरह वहां टाप रहे थे और एक-दूसरे पर रेत फेंक-फेंक कर खूब मजे ले रहे थे।

परसू भी अब गहरे गड्ढे से बाहर आ गया और बिना एक शब्द बोले कुछ विचार करता रहा। दोपहर बीतने को थी, फिर काम करने वाले उन सब के मुंह में अभी तक कुछ नहीं गया था। परसू ने कामचलाऊ बांस के ढांचे में खाना पकाने के सब बर्तन रख छोड़े थे। वहां चावल, दाल, आलू और कुछ सब्जियां भी पड़ी थीं। उसकी मां ने उसे थोड़ा अचार भी भेजा था। वह काफी स्वादिष्ट अचार था। वह पिसे हुए सरसों के बीजों की चटनी के रूप में था जिसमें खट्टे आम मिलाए गए थे। लेकिन परसू का मन नहीं हो रहा था कि वह खाना पकाए।

पहले फैसला यही हुआ कि कामगार कुआं खोदेंगे और परसू खाना पकाएगा।

पर जैसा सोचा गया था, वैसा हो न सका।

उधर दोपहर का सूरज अपना पूरा जोर दिखा रहा था। और रेत तथा पत्थरों का ढेर उनके प्रयास का मजाक उड़ा रहा था। परसू को पता था कि उसे मजदूरों को खाना खिलाना है, क्योंकि उसके साथ-साथ वे भी तो भूखे थे।

उसी समय गांव का सबसे बूढ़ा व्यक्ति अपनी गुमशुदा गाय को ढूंढ़ता-ढूंढ़ता वहां आ पहुंचा—गाय अपना खूंटा तोड़कर भागी थी। बूढ़ा व्यक्ति अपनी लाठी पर झुकता हुआ बोला, "ओवरसियर के पास फिर क्यों नहीं जाते और उसे जगह बदलने के लिए क्यों नहीं कहते ? फिजूल में मेहनत क्यों किए जा रहे हो ? जो असंभव है, उसे संभव कैसे बनाना चाहते हो ?"

परसू ने फौरन जवाब नहीं दिया। कुछ सोचकर अपना दृढ़ निश्चय दिखाता हुआ बोला, "मैं लाइमेकूरी में ही कुआं खोदकर दिखाऊंगा। कामयाबी मुझे मिलकर रहेगी। मुझे बीच में ही छोड़ देने को मत कहो, दद्दू !"

4

दोपहर के बाद ओवरसियर निक्कर और रंगदार कमीज पहने अधखुदे कुएं को देखने आया। रेत और पत्थरों के इतने बड़े ढेर को देखकर वह गुस्से से बोला, "जब पांच फुट तक भी तुम्हें पानी नहीं दिखा, तब खुदाई जारी क्यों रखी ? उसी वक्त तुम्हें हमें खबर देनी चाहिए थी। तुम तो दस फुट तक खोद चुके हो और सरकारी कायदे से यह गलत भी है। इसलिए यह उम्मीद मत रखो कि हम तुम्हारे नुकसान को भी पूरा करेंगे।"

परसू हाथ जोड़कर खड़ा हो गया, "हुजूर, कायदे-कानून इतनी कड़ाई से लागू मत कीजिए। मेरे छह रिग पहले ही बरबाद हो चुके हैं। अगर आप मेरे नुकसान की पूर्ति नहीं करेंगे तो मेरा खर्चा भी नहीं निकल पाएगा। हुजूर, मैं तबाह हो जाऊंगा, पूरी तरह तबाह हो जाऊंगा।"

वहां एक और बूढ़ा भी था। अजीब-सा मुंह बनाते हुए बोला, "मूर्ख, दो फुट की खुदाई करने के बाद ही तुम्हें ओवरसियर बाबू को बता देना चाहिए था। अब मिन्नत करने से क्या फायदा ? कुछ अच्छे-अच्छे तोहफे ओवरसियर बाबू को पेश करो। शायद वे कोई रास्ता निकाल लें।"

अपनी बात कहकर बूढ़ा ऐसे मुस्कराया जैसे कि वह काम निकालने के सभी दांव-पेंच जानता हो। लेकिन ओवरसियर की भृकुटि तन गई। उन्हें अपनी लोक-लाज भी तो रखनी थी। वे बांस की सीढ़ी से कुएं के भीतर उतरे, उन्हें वहां टूटे हुए रिग भी दिखे।

खैर, वह जब जाने को हुए तो लगा कि परसू और उसके बीच कोई समझौता हो गया है।

जंगल के रास्ते परसू घर लौट रहा था। उसे साइकिल पर सवार पठान दिख गया। वह किन्हीं दूर-दराज के गांवों से लौट रहा था। परसू को देखते ही वह जोर से बोला, "परसू, तुम्हारा काम कैसे चल रहा है ? अब भी वही रेत और चट्टानों का चक्कर है ? क्या पानी तक तुम पहुंच गए हो ?"

परसू ने 'हां' में अपना सिर हिला दिया। वह अपने मन के भाव उस पर खोलना नहीं चाहता था, न ही वह उसके सामने अपनी कोई कमजोरी जाहिर होने देना चाहता था, क्योंकि उससे तो उसने पैसा उधार ले रखा था। लेकिन कोई गौर करता तो उसके थके-मांदे, सूखे चेहरे को देखकर सब कुछ समझ जाता। वहां तो यह हालत थी जैसे कि हवा के तेज झोंके ने सूखे पत्तों को चारों ओर बिखेर दिया हो।

5

अपने बेटे की परेशानियां सुनकर परसू की मां ने उसके पास आशीर्वाद देने के लिए एक साधू को भेजा। साधू की जटाएं भगवान शिव की जटाओं के समान थीं। वह जहां कहीं भी जाता, अपने साथ अपनी टेक लेकर जाता। लोगों का ख्याल था कि साधू बाबा अपनी इस टेक के नोक वाले सिरे से बड़ी आसानी से उस बंजर भूमि में पानी वाले स्थल का पता लगा सकते हैं। यह सच भी था, क्योंकि कई गांवों में साधू बाबा पर लोगों को बताया था कि कुआं कहां खोदा जाए। लखीमपुर और आस-पास के इलाकों में बाबा में लोगों का इतना विश्वास था कि वे उन्हें 'जल बाबा' कहने लगे थे। ये बाबा लाल रंग के वस्त्र धारण करते थे और अपने चारों ओर रामनामी चादर ओढ़े रहते थे। अपनी जवानी में उनकी मांसपेशियां जरूर पुष्ट रही होंगी, लेकिन अब, यानी बुढ़ापे में, उनमें वह शक्ति नहीं दिखती थी।

चोम के पेड़ों से घिरे खुले मैदान में बाबा ने अपनी टेक की नोक जमीन में गड़ा दी, जैसे कि वह उन्हें बता देगी कि पानी कहां है। फिर वे रुक-रुककर अपने घुटनों के बल हो जाते और जमीन पर अपना कान लगाकर ऐसे सुनने लगते जैसे कि जमीन उनसे बात करेगी, या जैसे कि वे प्रकृति की भाषा समझते हों। वहां बच्चों का भी जमघट लग गया था, वे साधू बाबा की हर गतिविधि बड़ी उत्सुकता और कौतूहल से देख रहे थे।

लोगों का कहना था कि लखीमपुर और देखारी गांव की उस कठोर भूमि में भी, जहां पानी मिल पाना आसान न था, साधू बाबा के कहे स्थल पर पानी

मिला और वहां कुआं भी खोदा गया। लेकिन क्या ऐसी भूमि में भी पानी मिल सकता है जहां जल देवता का श्राप हो ? परसू की क्या दशा होगी ?

साधू बाबा एकाएक एक जगह रुके और वहां उन्होंने तीन कलाबाजियां लगाईं। उन्हें देखकर बच्चे खुशी से नाच उठे और उन्होंने भी बाबा की नकल करते हुए कलाबाजी लगाने की कोशिश की और इस कोशिश में एक-दूसरे पर गिरे भी। साधू बाबा अब हंस रहे थे और हंसते-हंसते सबको सुनाते हुए जोर से कह रहे थे, "अगर यहां खोदोगे तो तुम्हें जरूर पानी मिलेगा। मुझे पूरा विश्वास है। इसलिए बिना हिचकिचाए खोदते जाओ। पर एक बात याद रखना—खोदना शुरू करने से पहले जल देवता और देवी की पूजा जरूर करना।"

साधू बाबा के पीछे-पीछे चल रहे बच्चों ने वह सब दुहरा दिया जो उन्होंने सुना था।

"जल देवता की पूजा करो। जल देवी के सामने प्रार्थना करो और तब इस जगह पर खोदना शुरू करो।"

दुर्भाग्यवश साधू बाबा ने जिस भूंखड की ओर इशारा किया था, वह कुआं खोदने के लिए रेशम उत्पादन विभाग द्वारा स्वीकृत नहीं था। विभाग वालों का कहना था कि वह रेशम उत्पादन फार्म से काफी दूर पड़ेगा। परसू ने उन्हें हर तरह की दलील दी, पर उन्होंने नहीं माना।

निक्कर और रंगदार कमीज पहनने वाले ओवरसियर ने इस बार दो गांवों के बीच, चोम के पेड़ों की बगल में, एक दूसरे स्थल की ओर इशारा किया। उस स्थल पर उसने एक लंबी रस्सी से छह फुट व्यास का एक दायरा भी बनाया।

पर इस बार खुदाई शुरू करने से पहले परसू जल देवता की पूजा करना भूल गया। उसके दिमाग में बस अपने भाई का ही ख्याल था। कैमोथेरापी होने से उसके सर के सारे बाल झड़ गए थे। पहले उसके बाल काफी सुंदर और काले थे। अब जो थोड़े-बहुत बचे थे, वे सफेद हो गए थे। सफेद भी क्या, वे भूरे हो गए थे और उसका सर बांबी के समान दिखने लगा था।

परसू ने अपनी कमीज की आस्तीन से अपनी आंखों से आंसू पोंछे और सोचने लगा कि क्या भाई के इतना बीमार होते हुए भी उसे इतना मुश्किल काम हाथ में लेना चाहिए था ? अब देखो, कितने बड़े कर्ज के नीचे वह दब गया है ! क्या उसके लिए वह सब करना उचित था ? क्या उसे भी किसी भूमिगत संगठन से मिल जाना चाहिए था और अपने मित्रों—मैना, हैबुर और जोगेश—की तरह सशस्त्र संघर्ष का रास्ता अपना लेना चाहिए था ? वे सभी प्रतिबंधित क्रांतिकारी सशस्त्र युवक संगठन में शामिल होने के लिए सरायपुंग चले गए थे। क्या वह उसके लिए बेहतर रास्ता होता ?

इस बार, अलबत्ता, कुआं खोदने का काम सुगमता से शुरू हुआ। मिशिंग

जनजाति के श्रमिक गड्ढे में नीचे उतर गए और बिहार के श्रमिक बाहर रहे। परसू ने अपनी कमीज और पाजामा उतारा और कमर पर गमछा लपेटकर खाना पकाने और चाय बनाने में जुट गया।

जब पांच फुट की खुदाई हो गई तो पूरे मनोयोग से रिंग जमाने का काम शुरू हुआ। तीन रिंग तो बिना तरद्दुद के अंदर चले गए। इस पर बिहार के श्रमिक जोश से भर गए। उन्हें लगा कि इस बार वे कामयाब होंगे।

एक हफ्ते तक काम बड़ी अच्छी तरह चलता रहा। परेशानी तब शुरू हुई जब दसवां रिंग लगाया जाना था। हालांकि श्रमिक खुदाई बराबर किए जा रहे थे और मिट्टी निकाले जा रहे थे, पर रिंग उस तरह अंदर नहीं जा रहे थे जैसे पहले गए थे। वे एक ही जगह फंसे जा रहे थे। वे किसी भी दिशा में हिल नहीं रहे थे।

कामचलाऊ टीन की छत के नीचे उकडूं बैठकर और घुटनों पर अपना माथा टेककर परसू जल देवता से विह्वल होकर प्रार्थना करने लगा कि वह इस बार उसकी आशा को निराशा में न बदले। वह मन-ही-मन प्रार्थना कर रहा था। उसके पास के लोगों को भी पता न चला कि वह क्या कर रहा है। जो श्रमिक कुएं के भीतर थे, वे यह पता लगाने की कोशिश में जुटे हुए थे कि आखिर यह रुकावट आई कैसे ? उन्होंने रिंगों के कोनों को खुरचा भी ताकि अगर कहीं एक रिंग और दूसरी रिंग के जोड़ों के बीच कुछ जमा हुआ है तो वह निकल जाए। हो सकता है कोई ऐसी जड़ वहां आ घुसी हो जो बहुत ही कड़ी हो और ऐसी परेशानी खड़ी कर रही हो। दरअसल, जमीन के नीचे जड़ें इस तरह बिखरी मिलती हैं जैसे किसी श्मशान भूमि में खोपड़ियां और हड्डियां। क्या यह ताज्जुब की बात नहीं है कि वे हड्डियों के रंग की ही होती हैं और उनका ढब भी उसी तरह का होता है ?

परसू अपनी गहरी सोच से एकाएक जागा। उसे जगाने वाला एक अस्पष्ट स्वर था। उस स्वर को वह पहचान रहा था। नहीं, यह स्वर जल देवता का नहीं था, बल्कि कद्दावर और हृष्ट-पुष्ट काबुलीवाला का था जो उसके सामने खड़ा था।

"परसू, मैं तुम्हारे काम की रफ्तार बराबर देख रहा हूं। मुझे नहीं लगता कि तुम्हें कामयाबी मिलेगी। तुमने मेरी रकम दो महीने में लौटाने की बात कही थी। तुमने एक इकरारनामे पर दस्तखत भी किए थे। यह मत भूलो—लखीमपुर में हर कोई रहमत पठान को जानता है। अपनी बात से मुकरने की कोशिश मत करना।"

परसू के हाथ-पांव फूल गए। उसने स्पष्टीकरण देने की कोशिश की, पर इसके पहले ही पठान अपनी साइकिल पर सवार होकर चोम के जंगल की बगल से पगडंडी के रास्ते रवाना हो गया और जल्दी ही अदृश्य भी हो गया।

श्रमिकों ने खुदाई जारी रखी, पर उन्हें भरोसा नहीं था कि उनके हाथ कुछ लगेगा। बेहद कोशिश के बाद रिंग एक फुट तक जाता और फिर कहीं-न-कहीं

रुक जाता।

शाम हो रही थी। श्रमिकों ने छुट्टी कर दी और निराश-से हुए आपस में एक-दूसरे को दिन का ब्योरा देने लगे। रात काटने के लिए उन्हें पैदल चलकर जोनाई पहुंचना था जो काफी दूर था।

पर परसू वहीं-का-वहीं बैठा रहा। उसने श्रमिकों से केवल इतना-भर कहा, "पौ फटते ही तुम जोनाई से चल पड़ना और यहां सुबह-सुबह पहुंच जाना। मैं रात यहीं बिताऊंगा।"

श्रमिकों को परसू की सुरक्षा की भी चिंता थी। वे सभी एक साथ बोल उठे, "यहां जंगली जानवर हैं। तुम अकेले यहां कैसे रात भर पड़े रहोगे?"

परसू ने उन्हें समझाने की कोशिश की, "चिंता की कोई बात नहीं, आज रात लखीमपुर से एक नाटक मंडली लौटेगी। वे इसी रास्ते से गुजरेंगे। मुझे उनसे अपने भाई के बारे में कुछ जानकारी मिल जाएगी। मैं उनका इंतजार करूंगा और फिर जोनाई के लिए चल पड़ूंगा। इसलिए तुम लोग जाओ। मैं कुछ देर बाद रात को तुमसे आ मिलूंगा।"

आकाश में तैरता चांद आधी डूबी हुई रूपहली नाव की तरह दिख रहा था। मैदान और जंगल चांद की रोशनी में नहाए हुए थे। बंजर भूमि झील की तरह दिख रही थी। पेड़ और बेलें तरोताजा हो रही थीं, जैसे कि उन्हें रेशमी कपड़े के एक टुकड़े से अच्छी तरह पोंछा गया हो। कुएं से खोदकर बाहर निकाले गए पत्थर और रेत भूमि पर गुंबद की शक्ल में पड़े थे। कभी-कभी रेत चांद की रोशनी में चांदी के चूरे जैसे दिखाई देती थी। पत्थर जली हुई हड्डियों की तरह दिखते थे और ऐसे घूरते लग रहे थे जैसे कि चिता पर पड़ी कोई लाश घूर रही हो—वह लाश, जो जलकर राख होने को हो।

रात का जाने कौन-सा पहर था जब नाटक मंडली के लोग मैदान के एक कोने पर दिखाई दिए। वे मीलों दूर से चलते आ रहे थे और गले में गेंदे की मालाएं पहने हुए थे। वे जोर-जोर से बातें कर रहे थे।

परसू उनकी आवाज पहचानता था। वह चिल्लाया, "अरे, सोने ! बप ! और हलधर !"

उधर से उनकी आवाज आई, "ओ-हो, परसू ! मरे हुए हाथी की तरह पड़ा है वह बड़ा-सा गुंबद, क्या वहीं है कुआं जो तुमने खोदा है ? चले आओ, चले आओ। चांदनी रात में तुम्हें रास्ता ढूंढ़ने में कोई मुश्किल नहीं आएगी।"

नाटक मंडली के ये सदस्य, जो जगह-जगह नाटक खेलते थे, आपस में भी बतियाए जा रहे थे। इतने बड़े मैदान में पहले वे भी रास्ते से भटक गए थे।

उनमें से कुछ कह रहे थे, "हां, हां, अब हमें साफ दिखने लगा है। पहले हम भी धोखा खा गए थे।" फिर उन्होंने परसू को सावधान किया, "जरा ध्यान

से आना। कहीं जंगली बिच्छू बूटी में न फंस जाना।''

अब दूर से ही उन्होंने पूछा, ''हमें पता चला है कि कुआं खोदने के चक्कर में तुम्हें बहुत परेशानी उठानी पड़ी है। यह सच है न ?''

अब तक सभी लोग नजदीक आ चुके थे और परसू के रू-ब-रू खड़े थे। वे सब उसे जानते थे, वह भी उन्हें जानता था। दरअसल, वे भी उसी गांव या आस-पास के गांवों के थे, जहां से परसू आया था।

उनमें से एक ने अपनी ढोलक पर दो-चार थापें दीं और वैष्णव भजन की एक पंक्ति गुनगुनाने लगा :

''हरे कृष्णा ! हरे कृष्णा ! तेरे नाम के सभी दीवाने हैं, क्या स्त्रियां और क्या शूद्र। वे तेरा नाम लेकर ही भवसागर को भी पार कर जाएंगे। ...हरे कृष्णा ! हरे कृष्णा !''

एकाएक उस चांदनी रात में हर कोई चुप हो गया। हलधर ने अपने दोनों हाथ उठाए और बोला, ''परसू, तुम्हारे लिए बुरी खबर है। आज तुम्हारी मां दामोदर के साथ गुवाहाटी के लिए रवाना हो चुकी है। जब तुम्हारा भाई खाना खाने को था तो वह बेहोश हो गया। उसे गुवाहाटी के मेडिकल कालेज हास्पिटल ले जाना होगा।''

यह सुनते ही परसू के भीतर से पीड़ा की चीख निकलने को हुई। वह उसे बड़ी मुश्किल से दबा पाया। उसका दिल रेशा-रेशा हो रहा था। हलधर मजबूत काठी का था। वह धोती और कमीज पहने हुए था। उसने उसके दोनों हाथों को सहलाते हुए कहा, ''तुम्हारी मां कह रही थी कि तुम्हें चिंता करने की जरूरत नहीं। गुवाहाटी में तुम्हारा चाचा है। वह तुम्हारे भाई के साथ रहेगा। अब और देर न करो और जोनाई की राह पकड़ो।''

और यह कहकर नाटक मंडली के लोग भी आगे बढ़ गए। अगली शाम उन्हें किसी गांव या कस्बे में अपना कार्यक्रम करना था। इन छोटी-छोटी मंडलियों को इन दिनों व्यस्त रहना पड़ता है। मंचन का सामान उनके पीछे-पीछे बैलगाड़ी से आता है। यहां का ऐसा ही चलन है।

परसू अकेला ही जोनाई के लिए चल पड़ा। उसे रात वहीं काटनी थी। हालांकि खुले मैदान में हर कहीं मिट्टी के ढेले पड़े थे, पर उसे यही लग रहा था कि मैदान बिल्कुल साफ है। यह चांदनी के कारण था, हालांकि वह दो-एक बार उन ढेलों से टकराकर गिरा भी।

उसका छोटा भाई, जिसे वह बहुत चाहता था, शायद इस बार बीमारी से उबर न सके। क्या वह इतनी बड़ी क्षति बरदाश्त कर पाएगा ?

चांद की रोशनी में अमरूद के पेड़ों की जड़ें संगमरमर के टीलों की तरह दिख रही थीं। कुछ टीलों पर उगी हुई घास के चकत्ते रणक्षेत्र में काम आए सैनिकों

के इधर-उधर बिखरे कनटोपों के समान दिख रहे थे। हर वस्तु परसू को किसी अंधियारी कंदरा की ओर खींच रही थी। वह कुआं भी, जिसे उसने स्वयं खोदा था, उसे जमीन के नीचे किसी अनजानी विचित्र कंदरा की ओर लिए जा रहा था। उसे लगा जैसे कि रहमत पठान यह सब एक कसाई की तरह तौल-परख रहा है।

अगले दिन, हालांकि सुबह-सवेरे ही श्रमिकों ने खुदाई का काम शुरू कर दिया था, लेकिन वे एक इंच भी रिगों को नीचे न कर पाए थे। मिशिंग जनजाति के श्रमिक तो तीन घंटे तक इस कोशिश में लगे रहे, पर उनकी तमाम कोशिशें बेकार रहीं। रिग बिलकुल टस से मस न होते थे।

आखिर, वे हताश होकर चिल्ला पड़े, "इस भूमि पर भी किसी का शाप है। यहां कुआं नहीं खोदा जा सकता।" और यह कहकर वे बांस की सीढ़ी से बाहर आ गए।

परसू उस समय कामचलाऊ छत के नीचे खाना पका रहा था। उन्हें बाहर आए देखकर वह फौरन उनकी ओर लपका, लेकिन वे भीतर जाने को तैयार ही न थे। उधर परसू भी हार मानने वाला नहीं था। वह उस सांप की तरह मचल पड़ा था जिस पर पांव पड़ गया हो। वह पूरी तरह मुकाबला करने को तैयार था, चाहे कुछ भी हो जाए। उसने तुरंत अपने कपड़े उतारे, कमर पर गमछा बांधा और कुएं के भीतर हो लिया और बड़ी सावधानी से उन स्थलों को खुरचने लगा जहां एक रिग दूसरे से मिलाया गया था। जैसे कि उस पर भूत सवार हो। वह अपनी उंगलियों से ही रिगों के कोने खुरचे जा रहा था और फिर उन्हें अंदर धकेलने की कोशिश करने लगा था। वह घंटों उसी कशमकश में रहा। जैसे वह पागल हो रहा हो। वह खाना-पीना भी भूल गया।

फिर उसके हाथों को कुछ महसूस हुआ। वह कोई नन्हीं-सी चीज थी, छिपकली की पतली दुम की तरह। वह एकदम खुशी से भर गया। वह हवा में कलाबाजियां लगाने को हुआ।

लेकिन वह कोई मामूली जड़ नहीं थी। उसने खूब जोर लगाया, पर उसे बाहर न निकाल पाया। वह जड़ गोह की तरह थी जिसमें इतनी ताकत होती है कि चाहे उसकी दुम आपके हाथ में हो, आप उसे उसके बिल से बाहर नहीं खींच सकते।

मिशिंग जनजाति के एक श्रमिक ने चुनौती स्वीकार की। वह भी कुएं में उतर गया और दोनों ने मिलकर, पूरी ताकत लगाई, जिससे जड़ धीरे-धीरे बाहर आने लगी। लखीमपुर के बच्चे आह्लाद से भर कर गाने लगे :

"खींचो, खींचो, खींचो
बंदर की दुम खींचो।"

फिर वह श्रमिक कुल्हाड़ी लेने बाहर आया। इस बार बिहार के श्रमिक भी उसके साथ भीतर हो लिए और वे भी उस जड़ को खींचने लगे। उन्हें बड़ी सावधानी बरतनी पड़ रही थी, वरना हो सकता था कि रिगों को कुछ नुकसान पहुंचता।

इस बार दो श्रमिक बाहर आ गए और मिशिंग जनजाति के श्रमिक अपने साथ बड़े-बड़े चाकू लेकर भीतर चले गए और परसू के साथ मिलकर सावधानी से जड़ काटने लगे। हालांकि जहां से परसू ने जड़ को पकड़ रखा था, वहां वह पतली थी, लेकिन थी बहुत मजबूत। जिस समय उसे काटा गया, उसके गूदे से काफी रस निकला। दरअसल, जड़ के भीतर का भाग दूध जैसा सफेद था और चमकीला था और श्रमिकों ने भी पहले ऐसी जड़ कभी नहीं देखी थी। और तो और, यह बता पाना निहायत मुश्किल था कि इस जड़ के हाथ-पांव भूमि में कहां-कहां तक फैले हुए हैं। क्या यह वह रस्सा तो नहीं जिसकी मदद से जल देवता भूमि के नीचे से जल खींचता है ? जब उस जड़ को कुल्हाड़ी से काटा गया तो उसके अंदर से खून जैसा पदार्थ बहने लगा जिससे श्रमिकों के हाथ सन गए। आखिर, जब जड़ को निकाल बाहर फेंका गया, तो कुछ ही क्षणों में रिग खुद-ब-खुद नीचे जाने लगे। इसके साथ ही गांव की औरतों का गीत भी गूंज उठा। ये औरतें कुएं से पानी लेने गई थीं। वे गा रही थीं :

"जल देवता, जल देवता ! हम पर कृपादृष्टि रखो।
हम अपने कंधों पर अपने बाल फैलाकर
चंपक और चमेली से तुम्हारी पूजा करेंगी।
जल देवता, जल देवता ! हम पर कृपादृष्टि रखो।"

अब एक रिग दूसरे के ऊपर ऐन ठीक बैठ गया था। श्रमिक खुशी से नाच रहे थे।

कुआं खोदने का यह काम एक हफ्ते तक खूब अच्छी तरह चला। पंद्रह रिग अंदर बैठाए जा चुके थे, पर पानी का अभी कोई नामोनिशान न था। एक व्यक्ति जो अपनी बैलगाड़ी में कुएं से निकाली मिट्टी और रेत उठाने आया था, अपने ढंग से बोला, "अगर पंद्रह रिग लगा देने पर भी पानी नहीं दिखाई पड़ा है, तो समझ लो इस कुएं में पानी मिलने की कोई उम्मीद नहीं है। यह सूखा कुआं भी हो सकता है। अब इसे दुर्भाग्य ही समझो। इस इलाके में पहले भी दो-तीन लोग कुआं खोदने की कोशिश कर चुके हैं, पर उनके हाथ भी निराशा ही लगी। चाहे कितनी भी खुदाई कर लो, सिर्फ रेत ही मिलेगी, पानी नहीं।"

जो बाल्टी पानी खींचने के लिए लटकाई गई थी, उसमें केवल लाल मिट्टी, चट्टान के टुकड़े और रेत ही बाहर आई। कभी-कभी गीली काली मिट्टी भी बाहर आती थी, लेकिन पानी का कोई निशान न था।

मिशिंग जनजाति के श्रमिकों ने कुआं खोदते समय ऐसी काली मिट्टी पहले

कभी नहीं देखी थी।

कुएं से बाल्टी खींच रहा बिहार का श्रमिक एकाएक चिल्लाया, "काली मिट्टी के साथ-साथ कुछ मिट्टी के बर्तन भी आ रहे हैं। कहीं यह श्मशान भूमि तो नहीं ?"

परसू ने अपनी उंगलियों से बालटी की हर चीज को टटोला। नहीं, नहीं, यहां इस मिट्टी में आदमी की खोपड़ी या हड्डियों के कोई अवशेष नहीं है। यह आशंका निराधार है कि यह श्मशान भूमि रही होगी।

फिर भी इस आशंका ने उसका पूरी तरह पीछा नहीं छोड़ा। यह बात उसके भीतर घर कर गई थी। कुएं से जब भी बाल्टी निकाली जाती, परसू का दिल उसके साथ धक-धक करने लगता। यदि यहां अस्थियों का कोई भी चिह्न दिख पड़ा तो समझ लो इस कुएं से हर कोई परहेज करने लगेगा।

उसे गांव की स्त्रियों का सहलाता हुआ स्वर फिर सुन पड़ा। वही पहले वाला गीत था :

"जल देवता, जल देवता ! हम पर कृपादृष्टि रखना।
हम कंधों पर अपने बाल फैलाकर
सुगंधभरी चंपक और चमेली से तुम्हारी पूजा करेंगी।
जल देवता, जल देवता।"

अब धीरे-धीरे तलछट दिखाई देने लगा था। इसका मतलब है कि यहां पानी है। चूंकि परसू को कुआं खोदने का इससे पहले कोई तजुर्बा नहीं था, इसलिए उसे लगा कि आखिर उसके हाथ पानी लग ही गया है। वह एक शराबी की तरह उत्साहित हो उठा था और खुदाई किए ही जा रहा था। बीच-बीच में मिशिंग जनजाति के श्रमिक कभी-कभी थकावट महसूस करते थे, पर परसू के लिए कोई थकावट न थी। श्रमिक तो दरअसल उसकी हिम्मत की दाद दे रहे थे और कह रहे थे, "भले ही तुम पतले-दुबले हो, पर तुम में एक हाथी की ताकत है।"

परसू ने उनकी भी हिम्मत बंधाई, "हम अठारह रिग तो लगा चुके हैं। अब, पानी मिला ही समझो। अस्थियां या कपाल मिलने का अब कोई डर नहीं। देखो, देखो, हम गीली रेत तक पहुंच गए हैं।"

एक बाल्टी गीली रेत भी बाहर आई। परसू को कुएं से पानी लेने आई गांव की औरतों का मधुर गीत फिर सुनाई पड़ा :

"हम तुम्हारे लिए सुगंध-भरे फूलों की माला बनाएंगे।
ये फूल चंपक और चमेली जैसे होंगे।
हम अपने कंधों पर अपने बाल फैलाकर तुम्हारी आराधना करेंगे।
ओ जल परी, ओ जल परी..."

तीन दिन तक संघर्ष और चला और फिर कुएं के तल से पानी फूट पड़ा। वह पानी परसू की कमर तक आ गया था। जिस तरह रिग एक-दूसरे के ऊपर

जड़े गए थे, उससे कुआं बहुत सुंदर लग रहा था।

फिर लगा कि जल देवता या जल देवी ने परसू के साथ अजब खेल खेला है। सर से पांव तक कीच-भरे पानी से सराबोर परसू को जल देवता या जल परियां जैसे किसी जाल में फांस रही हों। जैसे कोई व्यक्ति मरुस्थल में मरीचिका के पीछे दीवाना हुआ भागता है, वैसे ही वह भी पानी के लिए दीवाना हो गया था। पानी जैसे कि उसकी पकड़ से बाहर हो रहा था। उसे कीच-भरा पानी मिल गया था, पर वह बिल्लौर जैसा साफ पानी चाहता था, किसी भी कीमत पर।

यह सच है कि पानी परसू की कमर तक आ गया था, लेकिन कुएं में चट्टानें थीं। उसने उन चट्टानों को तोड़ा और बाल्टी में भरकर ऊपर की ओर कर दिया। उसे डर था कि अगर इन चट्टानों को छोटे-छोटे टुकड़े करके बाहर नहीं फेंका गया तो ये रिंगों को नुकसान पहुंचा सकती हैं। वह इस कुएं के भीतर बड़ी कुदाल भी नहीं चला सकता था, इसलिए काम और भी मुश्किल हो गया था। दो कुदालें चट्टानों की वजह से पहले ही टूट चुकी थीं। पर ताज्जुब की बात यह थी कि कमर तक आया पानी एकाएक सूख गया था। मिशिंग जनजाति के श्रमिक तो अब वाकई डर गए थे। उन्हें डर इस बात का था कि जरूर किसी देवता ने इस जमीन को श्राप दे रखा है। वे कुएं में नीचे उतरने को भी तैयार न थे। उनके साथ ही बिहार के श्रमिकों को भी लग रहा था कि यह भूमि शापित है।

बहरहाल, उसने श्रमिकों को चाहे कितनी बातों में लाने की कोशिश की, वे कुएं में उतरने को तैयार न हुए। वे किसी भय से ग्रसित थे। वहां जो लोग इकट्ठे हो रहे थे, वे भी परेशान थे। "चले आओ, चले आओ ऊपर। इस कुएं पर जरूर किसी का शाप है। हमने पहले कभी ऐसा कुआं नहीं देखा जिसमें इस तरह पानी सूख जाए। चले आओ, चले आओ ऊपर।"

पर परसू ने भीड़ की परवाह नहीं की। वह खोदे ही चला गया और बाल्टी भर-भरकर गीली रेत को ऊपर भेजता रहा। हर किसी को हैरानी थी कि उसे शापित कुएं से डर क्यों नहीं लग रहा!

इस बीच परसू ने ऊपर की ओर भी देखा। भीड़ में उसे एक पगड़ी वाला व्यक्ति भी दिख पड़ा। उसकी पगड़ी में कलफ लगा था और उसका तुर्रा सांप के फन की तरह खड़ा था।

हां, वह रहमान पठान ही था, काबुलीवाला रहमान। इसमें शक की कोई गुंजाइश न थी।

परसू ने श्रमिकों को नीचे आने को नहीं कहा। वह अब इस बात पर तुल गया था कि वह खुद ही कुएं से पानी निकालकर दिखाएगा या इस कोशिश में अपनी जान दे देगा। वह किसी श्रमिक को भीतर चाहता भी नहीं था, क्योंकि अगर वहां किसी की मृत्यु हो जाती या कोई दुर्घटना हो जाती तो उसे श्रमिक के

परिवार को हरजाना देना पड़ता। अधिकारी उसके बिल से वह रकम काट भी सकता था। और परसू ने यह सुन भी रखा था कि पास का एक ठेकेदार हरजाना देने के इस चक्कर में ऋण तले पूरी तरह दब गया था। इसीलिए परसू नहीं चाहता था कि कोई श्रमिक वहां आए। बेहतर यही होगा कि वह अकेला ही काम करता रहे।

कुएं पर अब भारी जमघट लग गया था। कभी-कभी लोग अजब नजरों से ऐसे देखते, जैसे कि चिड़ियाघर में कोई निराला जानवर आया हो।

7

खैर, खुदाई करते रहने पर पानी फिर दिख पड़ा, भले ही वह केवल तीन फुट ही था। अपने इस प्रयास में परसू पूरी तरह पस्त हो चुका था। इस बीच कुएं का मुआयना करने जोनाई से एक विभागीय निरीक्षक भी आया था। वह मोटे शीशे का चश्मा पहने हुए था। उसकी जेब में तीन फाउंटेन पेन थे और टांगों पर हाफ पैंट थी। उसने बड़ी-बड़ी मूंछें रखी हुई थीं। लाइमेकूरी में हर कोई जानता था कि वह निरीक्षक तुनुक मिजाज है।

लकड़ी की तिपाई पर बैठकर पहले वह कुएं से निकाली गई पानी की बाल्टी का निरीक्षण करना चाहता था। जब बालटी उसके सामने रखी गई तो उसने पहले उस पर चश्मे के साथ निगाह डाली, फिर बिना चश्मे के। तीन बार पानी खींचा गया और तीन बार उसने उस पर निगाह डाली। पर वह किसी नतीजे पर नहीं पहुंच पा रहा था। वह यह फैसला भी नहीं कर पा रहा था कि पानी भूरा है या लाल। पर यह तो स्पष्ट ही था कि पानी बिल्लौर जैसा साफ नहीं है।

उसने अपनी जेब से एक डिबिया निकाली। उसमें उसने सुपारी, पान का पत्ता और खाने वाला तंबाकू रखा हुआ था। उसने पत्ते पर चूना लगाया और पान तैयार हो जाने पर उसे मुंह में डालकर बड़े चाव से चबाने लगा। पान के साथ तंबाकू चबाने से उसे और भी अधिक संतोष मिला।

परसू जमीन पर उकडूं होकर बैठ गया और उसने अपने घुटने अपनी छाती में भींच लिए। वह बड़ी आशा के साथ निरीक्षक की ओर देख रहा था। निरीक्षक के इर्द-गिर्द लोग भी जमा हो गए थे। वे भी बहुत उत्सुक थे।

आखिर, निरीक्षक ने चुप्पी तोड़ी और उसके मुंह से ये शब्द निकले : "मूर्ख, तुम्हें इस स्थल पर कुआं नहीं खोदना चाहिए था। किसने कहा था तुम्हें खोदने को ? इसके अलावा तुमने विभाग द्वारा निर्धारित गहराई से ज्यादा गहरा कुआं खोदा है।"

परसू ने अभी तक गीली हाफ पैंट नहीं बदली थी। उसके समूचे शरीर पर

अब भी कीच-भरा पानी था। उसकी उंगलियों से खून बह रहा था। घंटों तक रिगों के कोने खुरचने के कारण उसने अपने नाखूनों में घाव कर लिए थे और जिस समय वह कुएं से चट्टानें निकाल रहा था, उस समय चट्टानों के किनारों ने उसके हाथ काट डाले थे।

पर निरीक्षक को इससे कुछ लेना-देना नहीं था। वह बोला, "मैं ऐसा प्रमाण-पत्र नहीं दे सकता कि यह पानी साफ है। खुद ही देख लो। पानी का रंग लाल है। मैं यह प्रमाण-पत्र ही दे सकता हूं कि पानी लाल है। यह तुम सभी देख सकते हो।" और यह कहकर उसने अवहेलना के अंदाज में बाल्टी से थोड़ा पानी लेकर परसू के चेहरे पर उछाल दिया।

परसू चुप रहा। उसने केवल एक ठंडी सांस ली। लेकिन वहां कचरा उठाने आए एक कामगार ने परसू का पक्ष लिया और बिना हिचकिचाए बोला, "मालिक, अगर आप यह लिख देंगे कि पानी लाल है तो यह गरीब तो मारा जाएगा। इसके बिल को मंजूरी नहीं मिलेगी और इसकी हालत और खराब हो जाएगी।"

पर निरीक्षक पर इसका कोई असर नहीं हुआ। उसने अपनी साइकिल उठाई और जिधर से आया था, उसी दिशा में लौट गया।

जिस स्थल पर परसू ने कुआं खोदा था, गांव वालों के लिए वह स्थल आकर्षण तथा कौतुक का केंद्र बन गया। उसके सामने जो खाली जगह थी, वहां वे लोग अब अकसर जुटने लगे थे। उनलोगों में मिशिंग जनजाति का एक युवक भी था। वह परसू से बोला, "भैया, तुम कुएं में थोड़ी रेत क्यों नहीं डालते ? दो फुट तक रेत डालो, तब साफ पानी निकल आएगा।"

हर किसी ने इस सुझाव पर सहमति दिखाई और बोले, "हां, हां, तुम्हें कुएं में रेत डालनी चाहिए। यह सुझाव बहुत समझदारी वाला है।"

8

तीन दिन तक वे कुएं में रेत डालते रहे। परसू हर हालत में कुएं से साफ पानी चाहता था। वह पहले से भी ज्यादा अपने निश्चय पर दृढ़ था।

... फिर अप्रत्याशित ही हुआ। तीन दिन के बाद साफ पानी वाकई तिर आया। रेत ने जादू का काम किया था। यह एक करिश्मा था। कुएं का पानी उतना ही साफ-शफ्फाक था जितना किसी तेज बहती नदी का होता है।

परसू बेकार ही अब निरीक्षक की प्रतीक्षा कर रहा था कि वह फिर आए और उसके लिए उचित प्रमाण-पत्र जारी करे। इस बार परसू ही नहीं, बल्कि गांव के लोग तथा श्रमिक भी उसके आगमन की प्रतीक्षा कर रहे थे। जब कभी वे अनाज

के खेतों की तरफ से किसी को साइकिल पर आते देखते, वे चौकन्ने हो जाते और उनकी उम्मीद बंध जाती। वे उसे दूर से देखते ही चिल्ला पड़ते, "वह आ रहा है। देखो, वह आ रहा है।"

लेकिन निरीक्षक नहीं आया। गांव के निठल्ले बच्चे उसका मजाक उड़ाते हुए अकसर गाते :

"बड़ी-बड़ी मूंछों वाला
ढोल की तरह फूले पेट वाला
सुपरवाइजर बाबू आ रहा है।
हटो, उसके लिए रास्ता छोड़ो।
उसका पेट
रिश्वत का पैसा खा-खाकर
फूल गया है।
तीन बार कूदो,
अपने लंगोट कस लो,
और उसे कुएं में पटक दो।"

जब दो-तीन दिन तक इंतजार करने के बाद भी निरीक्षक नहीं आया तो परसू ने सरसों के तेल की लंबी गर्दन वाली एक खाली बोतल ली, उसे ठीक से धोया और फिर उसे कुएं के चमचम करते पानी से भर लिया। उसने फैसला कर लिया था कि वह स्वयं जोनाई में रेशम उत्पादन विभाग के अधिकारियों को यह पानी दिखाकर आएगा। उसने बोतल को साइकिल के हैंडल से नारियल के रेशों से बने रस्से से बांध लिया था और तेजी से साइकिल पर पांव चलाता जोनाई के लिए चल पड़ा था।

जिस रास्ते से परसू आगे बढ़ रहा था, वह सुंदर था। दूर से ही उसे केतकी के फूलों की सुगंध आई। जरूर वे फूल अपने यौवन में होंगे। वह उन्हें देख नहीं पा रहा था, पर उनकी सुगंध अपना एहसास छोड़ रही थी। ठंडी हवा ही अपने झोंके के साथ उस सुगंध को लाई होगी।

परसू अब देखारी नदी के किनारे-किनारे साइकिल चला रहा था। नदी सिलधारिया नाम की मछलियों से भरी हुई थी। उसके किनारों पर मिशिंग जनजाति के लोग बसे हुए थे। वे लोग एक उत्सव गीत गा रहे थे :

"बसंत ऋतु आ गई है
आओ, हम अपने बालों में आर्किड के पीले फूल सजाएं
और मेले में नृत्य करने चलें।"

रास्ते में परसू ने हवा में उड़ता एक छोटा-सा काला, लाल पूंछ वाला पक्षी तथा सफेद काले रंग के कठफोड़वों का झुंड देखा। उन्हें देखकर उसे खुशी हुई।

उसे एकाएक यह भी लगा कि अब सब ठीक रहेगा और किसी के लिए भी बोतल में भरे साफ चमचमाते पानी की अवहेलना कर पाना असंभव होगा।

कई दिन तक परसू अपनी साइकिल पर निरीक्षक के दफ्तर के इर्द गिर्द चक्कर लगाता रहा, पर उससे उसकी भेंट न हो सकी। कभी उसे सुनने को मिलता कि निरीक्षक गुवाहाटी चला गया है, कभी पता चलता कि वह लाइमेकूर गया है। गांव के बच्चे परसू को पानी की बोतल के साथ निरीक्षक के दफ्तर के बार-बार चक्कर लगाते देखकर अक्सर कोई गाना गाते हुए नाचने लगते। पर परसू ने इन सबकी कोई परवाह नहीं की। उसने उस दफ्तर में वह बोतल कई लोगों को दिखाई। हर कोई पानी की रंगत से प्रभावित था। रहमत पठान ने भी परसू को उस बोतल के साथ देखा था। दफ्तर के बाकी लोग भी देख चुके थे। इसलिए निरीक्षक के पास इसके सिवा अब कोई चारा नहीं रह गया था कि वह फिर वहां जाए और पानी का निरीक्षण करे। उसे इस पर गुस्सा भी आ रहा था।

आखिर, परसू को यह प्रमाण-पत्र मिल गया कि उसके कुएं में पानी है। पर उस प्रमाण-पत्र में यह उल्लेख नहीं था कि पानी का रंग कैसा है। इससे परसू को पूरी रकम नहीं मिल सकती थी जिसकी उसने मांग की थी। उसके बिल में से कुछ-न-कुछ पैसा कटना ही था। दूसरे, उसने जितने समय में काम खत्म हो जाने की उम्मीद की थी, उससे कहीं ज्यादा समय लगा था और इस दौरान उसे अपने श्रमिकों को भोजन और पैसा, दोनों देने पड़े थे। इसलिए उसके पास बहुत कम पैसा बचने की उम्मीद थी। इससे वह न केवल काबुलीवाला के पास गिरवी पड़ी अपनी मां की बालियां छुड़वाने में असमर्थ था, बल्कि उसे पठान को कर्ज की रकम वक्त पर न लौटाने के लिए भारी सूद भी देना पड़ सकता था।

परसू ने श्रमिकों को उनका देय चुकता किया और उन्हें रुखसत कर दिया। अगर उसे विभाग से कुछ मिल गया तो उसे वह अपने भाई के इलाज के लिए अपनी मां को दे देगा। पर वह अब अपने भाई से मिलने के लिए बड़ा उत्सुक था ताकि वह उसकी कुछ मदद कर सके। वह अब कुआं खोदते समय बनाई गई कामचलाऊ छत के नीचे बैठा संघर्ष से भरी उन तमाम स्थितियों पर विचार कर रहा था, जिनका उसे अपने जीवन में सामना करना पड़ा था। वह उनकी असलियत साफ-साफ देख रहा था

अब कुएं के पास रेत और चट्टानों के अवशेष कहीं दिखाई नहीं पड़ रहे थे। कल यह छत भी गायब हो जाएगी। लाइमेकुरी के एक शिक्षक ने इसकी व्यवस्था की थी। उसका भाई उसके द्वारा खोदा गया अगर यह कुआं देख सके तो वह बहुत खुश हो। पर क्या वह कभी यहां आ सकेगा ?

क्या उसके भाई का अंत वाकई आ रहा है ? वह तो इसकी कल्पना भी नहीं कर सकता। भाई के बिना यह संसार कैसा लगेगा ? एक बिंदु के परे तो वह

सोच भी नहीं सकता। सब कुछ गडमड हुआ दिखता है।

वह देर रात तक उस छत के नीचे बैठा रहा।

9

कुएं से बाहर आते समय परसू की दिमागी हालत एक पागल की दिमागी हालत के समान थी। जब तक वह कुएं में रहा, वह सारी दुनिया से कटा हुआ था। पर अब उसके सामने चिंताएं-ही-चिंताएं थीं। उसे अपने बिल मंजूर करवाने थे। निरीक्षक से मिला प्रमाण-पत्र भी पूरी तरह ठीक नहीं था। और, उसे रहमत पठान का डर भी खाए जा रहा था। उसे वक्त पर उसकी रकम लौटानी थी।

चलो, जो होता है होता रहे। वह इंतजार करेगा। वह पहले अपने भाई के पास जाएगा जो बिस्तर से लगा पड़ा है। उसके मन में सबसे ऊपर यही विचार था कि वह अपने भाई की जान कैसे बचाए ! वह यह विचार भी कर रहा था कि इस जीवन का अर्थ क्या है ! क्या यह अंतहीन भ्रामकता और विच्छेद का पर्याय नहीं है ? उसकी सरल बुद्धि ऐसे ही विचारों में उलझी हुई थी।

जर्मन घास और जंगली झाड़ियों से लदे हुए रास्ते से गुजरते समय परसू को अपने गांव के बाहर एक बड़े गड्ढे के निकट कुछ लोग बैठे दिखे। वहां जामुन का एक लंबा पेड़ भी था जिस पर भरपूर मात्रा में छोटे-छोटे रसीले जामुन लगे हुए थे। उस पर कुछ गिद्ध भी मंडरा रहे थे।

वह उस गड्ढे की ओर लपका। पर जिस तेजी से वह उधर लपका था, उससे उसकी सांस फूल गई और वह बुरी तरह हांफने लगा। गांव के लोग वहां जुटे तो जरूर थे, पर उन्होंने उसका अभिवादन नहीं किया और न ही किसी ने उससे गांव से इतने समय तक दूर रहने या उसके कुआं खोदने के बारे में बात की। हर किसी के चेहरे पर एक प्रकार का भय व्याप्त था। वहां मृत्यु की खामोशी थी। सामने भूमि पर उसका मित्र भोला मरा पड़ा था। उसके समूचे शरीर पर खून के छींटे थे। उसके सर और सीने से बुरी तरह खून बह रहा था। एक गोली ने उसके सीने को चीर डाला था।

भोला के मृत शरीर के पास ही एक और मृत शरीर पड़ा था। यह शरीर एक स्त्री का था। उसे किसी ने एक लंबी चादर से ढक दिया था। उसके बाल मिट्टी के ढेलों में उलझे हुए थे।

यह किसका शरीर है ? परसू को हैरानी हो रही थी। क्या यह बकुल का है ? यह विचार एकाएक उसके मन में कौंधा। हां, हां, उसी का है। भोला गांव में चुपके-चुपके आता था। वह तब से ही चुपके-चुपके आ रहा था जब से उसने

सरायपुंग में बंदूक इत्यादि चलाने का प्रशिक्षण लेना शुरू किया था। उसने कई चांदनी रातों में इसी स्थल के निकट उसे चमचमाती नली वाली राइफल लिए देखा था। वह जानता था कि यह भोला और बकुल का अभिसार स्थल है। प्रेमी युगल ने भी, जब कभी वह वहां से गुजरा, उसे देखा होगा। बल्कि भोला तो झाड़ियों में से ही चिल्ला पड़ता था, "अरे, तुम इतने झेंपू क्यों हो ? क्या तुम हमेशा भातखोर बने रहोगे ? मर्द की तरह व्यवहार करो।" वह उसे साहसी बनने की सलाह देता था, "तुम में सांप के बिल में से उसके अंडे निकालने की हिम्मत होनी चाहिए।"

परसू को वह सब याद आ रहा था। वह जल्दी-से-जल्दी वहां से हटने की कोशिश करता था और जब वह कोई जवाब नहीं देता था तो प्रेमी युगल उस पर हंसा करता था। उन दिनों बकुल की हंसी कितनी निश्चिंत थी ! प्रेमी आपस में इतने आह्लादित होते कि उन्हें आने वाले दिन का कोई ख्याल न होता। अब उसी निश्चिंत रहने वाली युवती का शरीर जमीन पर निष्प्राण पड़ा था।

वह गड्ढा और उसके आसपास का हिस्सा लोगों की भीड़ से भरा पड़ा था। इतने में पुलिस की जीप वहां पूरी रफ्तार से आई और उस स्थल से थोड़ा पहले एकाएक रुक गई। भीड़ में कुछ हरकत पैदा हुई। कुछ बेचैनी भी। परसू के लिए वहां रुके रहना दुश्वार हो गया। उसे चक्कर आने लगे। उसका मन हुआ कि वह वहां से भाग जाए। वह अपने घर पहुंचना चाहता था।

10

आखिर, परसू का बिल पास हो गया। पर उसे उतनी राशि नहीं मिली जितनी चक्रधर मंडल ने बताई थी। राशि हाथ में आने पर वह अपनी मां की बगल में फर्श पर ही बैठ गया ताकि स्थिति का जायजा लिया जा सके—कि सबका चुकता कर देने के बाद उसके पास क्या बचेगा ? दीए की रोशनी में बैठकर वह यह सब हिसाब-किताब कर रहा था। और, अब यह भी साफ हो गया था कि रहमत पठान का चुकता कर देने के बाद उनके पास दामोदर को वेल्लौर ले जाने के लिए कुछ नहीं बचेगा।

परसू की मां अब अपनी निराशा छिपा नहीं पा रही थी। वह घुटनों में अपना सर डालकर सिसकियां भरने लगी। रहमत पठान को अब तक पता चल गया होगा कि उसके बिल का भुगतान हो चुका है। चक्रधर मंडल ने ही उसे बता दिया होगा।

परसू दरवाजे पर खड़ा-खड़ा पठान का इंतजार कर रहा था। वह किसी समय भी आ सकता था। उसने मंडल से विनत भाव से कहा था कि वह पठान को उसके भाई की हालत के बारे में बता दे, उसे यह जानकारी नहीं थी कि इससे

कुछ हल निकलने वाला नहीं है। मंडल ने दामोदर के प्रति कोई सहानुभूति नहीं जताई। बेशक उसने, जब वह उनके यहां आया था, दामोदर की ओर गौर से देखा होगा, पर वह मात्र उत्सुकता के कारण, सहानुभूति के कारण नहीं। दामोदर एक तिपाई पर बैठा हुआ था। वह एक हफ्ते के बाद अपने बिस्तर से उठ पाया था।

कौन जाने, रहमत पठान अपना पैसा उगाहने कब आ जाए ? वह निश्चित रूप से आज ही आएगा। इस क्षेत्र में वह हर किसी से पैसा उगाह चुका था। अब उसे उन्हीं के यहां आना था।

ठक ! ठक ! ठक !

परसू को लगा जैसे कोई उसकी छाती ठोक रहा हो। उसे यह भी लगा जैसे कोई उसके दिल में कुआं खोद रहा हो। उसे पत्थर, रेत तथा कड़ी चट्टानों के अलावा अपने चारों ओर और कुछ दिखाई नहीं दे रहा था।

ठक ! ठक ! ठक !

उसकी आंखों में रेत गिर रही थी। उसकी आंखें रेत से भर गई थीं।

शाम के समय रहमत पठान वाकई आ पहुंचा। उसके साथ तीन और पठान भी थे। वे खपच्ची के दरवाजे पर ही उसका इंतजार करते रहे। रहमत पठान घर के भीतर आया और सहन में खड़े-खड़े जोर-जोर से पुकारने लगा—"परसू, ओ परसू !"

अपने सर पर पल्लू थोड़ा नीचा करके परसू की मां सहन में बाहर आई। उसके हाथ में एक तिपाई थी। लंब-तड़ंग पठान को देखकर वह थोड़ा सहमी। पठान अपनी पारंपरिक अफगानी वेशभूषा में था—सर पर सफेद पग्गड़, काली जैकट तथा सलवार-कमीज। वह सहन के बीचोंबीच खड़ा था।

फिर वह ऊंची आवाज में बोला, "मैं तो यों ही चला आया था। मैं परसू से मिलना चाहता हूं। मुझे अपनी रकम वापस चाहिए।"

परसू भी बाहर चला आया और मिन्नत करता-सा बोला, "हम पर रहम कीजिए, सरकार ! हम बहुत परेशानी में हैं।"

"माजरा क्या है ?" पठान ने परसू की परेशानी का जायजा लेना चाहा।

"मेरा भाई सख्त बीमार है। डाक्टर कह रहे हैं कि उसे इलाज के लिए वेल्लौर ले जाना होगा। मैंने इसी भाई के इलाज के लिए कुआं खोदने का छोटा-सा ठेका लिया था ताकि कुछ पैसा बच जाए। पर मेरे पास बचा ही क्या है ? अगर मैं आपको आपकी रकम लौटा दूं, तो मेरे पास कुछ भी नहीं बचता।"

पठान कुछ देर तक चुप रहा। फिर बोला, "तो यह तुम्हारा भाई है जिसकी कैमोथेरापी होनी है। किसी ने मुझसे इसका जिक्र किया था।"

"हां, हां, उसका यही इलाज चल रहा है।"

पठान कुछ क्षण चुप रहा और फिर बोला, "मुझे अपने भाई से मिलवाओ तो सही। पर हम तो मुसलमान हैं। तुम्हारे सोने वाले कमरे में मेरा जाना अखरेगा

तो नहीं ?''

''बिल्कुल नहीं। आइए, आइए। वह तो बिस्तर से उठ भी नहीं पा रहा।''

रहमत पठान ने अपना पग्गड़ उतारा और कमरे में दाखिल हो गया। कमरे का दरवाजा इतना नीचा था कि उसे झुककर दाखिल होना पड़ा।

दीए के प्रकाश में रहमत पठान ने देखा कि दामोदर एक छोटे-से बिस्तर पर पड़ा है। वह हड्डियों का ढांचा हो रहा था। उसके शरीर पर मांस नाम-मात्र को था। उसका जीवन अंधेरी सुरंग बन गया था। उसकी आंखें उन दीयों की तरह थीं जिनका तेल खत्म होने को हो और जिनकी बातियां बुझने से पहले झकाझक जल रही हों। उसके सर के बाल बिलकुल सीधे खड़े थे जिससे उसका सर शरीर की अपेक्षा बड़ा दिख रहा था। अपनी आंखों में हैरत भरकर रहमत पठान ने लड़के के चेहरे की तरफ देखा, फिर उसने उसके हाथों और पांवों पर नजर डाली। उसने अपने दोनों हाथ ऊपर उठाए और बीमार लड़के के लिए दुआ मांगने लगा। फिर ऐसे भी लगा जैसे कि वह दामोदर से कुछ कह रहा हो। सहन में बाहर आकर उसने एक बार फिर अपने हाथ आसमान की तरफ उठाए और आंखें बंद करके फिर दुआ मांगने लगा। बेशक, वह परसू के भाई के लिए दुआ मांग रहा था।

परसू और उसकी मां सहन में खड़े यह सोच रहे थे कि देखे, पठान अब उनसे क्या कहता है ?

पर पठान ने कुछ नहीं कहा। उसने केवल अपनी जेब से एक रुमाल निकाला। रुमाल में परसू की मां की बालियां लपेटी हुई थीं। परसू को वे बालियां देते हुए वह बोला, ''रख लो इन्हें और मेरी बात सुनो। तुम्हें फौरन कर्ज की रकम लौटाने की जरूरत नहीं। तुमने कुआं खोदकर वह रकम कमाई है। तुमने वह काम भी ढंग से किया है। तुम अब और कई कुएं खोदोगे। जाओ, अपने भाई का बढ़िया-से-बढ़िया इलाज करवाओ। याद रखो, भाई खुदा की नियामत है। अगर तुम्हारा भाई तुम से प्यार करता है तो समझ लो, सारी दुनिया तुम्हारे साथ है।''

यह कहकर रहमत पठान परसू के घर के खपच्चियों वाले दरवाजे से बाहर चला आया और अपनी साइकिल पर सवार होकर आगे बढ़ गया। उसके साथ आए और पठान भी जल्दी-जल्दी मुख्य सड़क की ओर बढ़ रहे थे और जल्दी ही वे ओझल भी हो गए।

रहमत पठान अपने पैसों की वसूली न कर सका। शहर के बीचोंबीच उसकी किसी अनजाने हमलावर ने हत्या कर दी।

हिम साम्राज्ञी

सीतादेवी ने ऐसा कभी सोचा भी नहीं था कि पुरानी दिल्ली की सड़कों पर गाड़ियों के साथ-साथ गऊएं भी घूमती मिल जाएंगी।

एक दिन वह घंटाघर के निकट भीड़-भड़क्के वाले चौराहे को पार करने की कोशिश कर रही थी। एक तो बसों की भरमार, फिर तरह-तरह की गाड़ियां, टांगे, रिक्शा, पैदल चलने वाले—इन सबकी वजह से चौराहा पार करना उतना ही दुश्वार हो गया था जितना दिल्ली में किसी नए-नए आने वाले के लिए हो सकता है।

जिस समय वह लोगों में फंसी खड़ी थी, उसे एक विचित्र दृश्य देखने को मिला—लोगों के साथ-साथ दो सांड भी सड़क पार करने के इंतजार में थे। सीता देवी ने इतने बड़े पशु पहले कभी नहीं देखे थे। उनके कान खड़े थे, ऐसा प्रतीत होता था जैसे वे लोगों से कंधा रगड़कर निकलने को उतावले हो रहे थे। सीतादेवी को घंटाघर की दो सड़कें पार करने और अंबा सिनेमाघर के बगल वाली सड़क तक पहुंचने में बीस मिनट लग गए। यह सड़क सिंह सभा सड़क में जा मिलती थी।

लेकिन सांडों वाला जो दृश्य देखा था, उससे वह ठगी-सी रह गई—सांड भीड़ में से होते हुए उससे कहीं आगे निकल गए थे और डोमर्स नाम के रेस्तरां को पार करते हुए काफी आगे बढ़ गए थे...। इतना ही नहीं, सड़क के बीचोंबीच, जहां गाड़ियों का जमघट था, वहां और भी कई सांड तथा कुछ बड़े-बड़े कूबड़ वाले बैल भी बैठे हुए थे।

सीतादेवी कश्मीरी गेट की एक कन्या पाठशाला में पढ़ाती थी। वह फर्रुखाबाद की रहने वाली थी और अपनी एक साथी, स्नेहलता के साथ, सिंह सभा मार्ग के गुरुद्वारा के निकट एक बरसाती में रहती थी। बरसाती में एक मेस (पकवान घर) चलता था। दिल्ली विश्वविद्यालय के इर्द-गिर्द बिखरे हुए विद्यार्थियों के लिए मेस में रहना एक आम बात हो गई थी, और युवतियों को तो वह विशेषकर बहुत सुविधाजनक लगता था। तीमारपुर तथा सरायरोहिला के निकट असम से आए विद्यार्थियों की एक अच्छी-खासी संख्या थी। बिहार, उड़ीसा तथा मध्यप्रदेश की लड़कियों को जब कालेज के होस्टलों में जगह नहीं मिली, तो उन्होंने बरसातियों

और मियानियों में अपना डेरा जमा लिया। उन्होंने शारीरिक कष्ट झेलना सीख लिया था और उनमें से कुछ को तरह-तरह के अनुभव भी हुए थे।

सीतादेवी और स्नेह की पाठशाला यमुना के किनारे स्थित थी। उन्हें वहां पहुंचने के लिए रोशनआरा रोड से कश्मीरी गेट तक की बस लेनी होती थी। बस कभी-कभी बंगलो रोड से भी होकर जाती। कभी-कभी यह विश्वविद्यालय के बगल वाला रास्ता लेकर माल रोड और निकलसन कब्रिस्तान होती हुई बस अड्डे की ओर बढ़ती। वे कभी बस अड्डे पर उतर जातीं, कभी निगमबोध घाट पर। रोशनआरा रोड से बस अड्डे तक सीतादेवी को सड़क पर जितनी भी गऊएं दिख जातीं, वह उनकी गिनती करने की कोशिश करती। उसने एक समाचार-पत्र को मुख्य मार्गों पर आवारा तथा बेरोकटोक घूमते पशुओं के बारे में पत्र भी लिखे थे और सुझाव दिया था कि नगर निगम इन भटकते पशुओं की जिम्मेदारी अपने ऊपर ले और उन्हें संभाले, पर उसके ये पत्र छपे ही नहीं। गऊओं की दुर्दशा से उसका दिल पसीज जाता था। उसे यह कतई उम्मीद नहीं थी कि भारत की राजधानी में उसे ऐसे दृश्य भी देखने को मिलेंगे।

रोशनआरा रोड से माल रोड तक, बल्कि थोड़ा आगे ब्रिटिश काल के मिलिट्री प्रेस तक, जो खैबर पास की चोटी पर 'नखालिस मुस्लिम गोश्त' की दुकान के सामने थीं, गऊएं-ही-गऊएं दिख जाती थीं। ताज्जुब था कि वे इस तरह सड़क के बीचोंबीच नांगिया पार्क से रोशनआरा पुलिस स्टेशन तक बैठी रहती थीं। फिर हमेशा यही खतरा बना रहता कि कोई गाड़ी उनकी दुम या टांग पर से होती हुई न निकल जाए। वैसे गाड़ियां उनसे थोड़ा-बहुत तो टकराती ही थीं और पैदल चलने वालों की ठोकरें भी उन्हें लगती ही थीं, जिन्हें वे वीतरागी बनी सहती रहती थीं। वहां अपने बछड़े के साथ एक सफेद गाय उसे अक्सर दिख जाती। उसे देखने की वह आदी हो गई थी।

एक दिन बस में बैठी सीतादेवी गऊओं की गिनती करती रही, और जब तक वह बस अड्डे पर उतरी, उसने जान लिया कि उनमें तीन घायल सांड भी हैं।

एक सांड के सींगों से खून बह रहा था। दूसरे के खुर किसी छकड़े के पहियों से अलग हो गए थे, और घाव पर मक्खियां भिनभिना रही थीं। भूरे रंग के एक और सांड के खुरों पर से भी शायद कोई कार निकल गई थी। अपनी खून से सनी टांग को वह मुश्किल से उठाता हुआ, लंगड़ाकर भीड़भरी सड़क को पार करने की कोशिश कर रहा था। इस तरह का दृश्य देखकर सीतादेवी के दिल में जैसे एक नश्तर चुभ गया। चाहे वह अपनी कक्षा में हमेशा की तरह पढ़ाती रही, पर वह बराबर गहरे सोच में डूबी रही।

चार बजे जब वह पाठशाला से लौट रही थी, उसे वे घायल पशु फिर दिख

गए। उनके शरीर पर हर कहीं खून-ही-खून था—सींगों में, टांगों में, खुरों में।

...सीतादेवी जब घर पहुंची तो उसने बारजे में एक चारपाई बिछा ली। उसकी सहेली, स्नेह को एक पुरुष मित्र का इंतजार था। उसे शायद उसके साथ कोई फिल्म देखने जाना था। बारजे में सुगंध-ही-सुगंध थी—मीठी-मीठी, अलग तरह की। उसने अपने ऊपर बड़ा महंगा इत्र छिड़क रखा था। सीतादेवी को अभी तक यह जानकारी नहीं थी कि वह उस पुरुष से कभी शादी करेगी भी या नहीं। पर उसका अपना ऐसा कोई मित्र न था। वह देखने में भी कोई बहुत अच्छी नहीं थी। कद में भी वह छोटी थी। उसके रंग में भी आभा नहीं थी। उसका पिता फर्रुखाबाद में एक सिपाही था जिसे दो साल पहले उग्रवादियों ने गोलियों से भून डाला था। फर्रुखाबाद में अब उसकी मां और भाई ही थे।

वह भीतर गई और एक कागज का टुकड़ा तथा पेन उठा लाई। पशुओं की हालत अब भी उसे मथ रही थी। वह ज्यों की त्यों उसके मन में बसी हुई थी।

वाह, उसकी सहेली द्वारा लगाए गए इत्र की क्या खुशबू है ! उधर उसके पिता को गोली से जो खत्म किया गया था, उसकी स्मृति की पीड़ा क्या कम है ? पर उसका मन उनसे भाग रहा था और कहीं अन्यत्र विश्रांति चाहता था।

क्या उसके सींगों पर खून था ?

खुरों पर खून था ?

...क्या वह फिर पत्र लिखे ? अखबार वाले ऐसे पत्रों को तब तक छापने की जहमत नहीं उठाते जब तक कि आपका वांछित संपर्क न हो। क्या गऊओं के बारे में लिखा, इसलिए ? क्या सभ्य मानव समाज का अपना कोई दायित्व नहीं ?

दिसंबर का महीना था। संध्या अभी उतर ही रही थी, लेकिन धूल, धुआं और धुंध ऐसे छाए हुए थे जैसे दिल्ली ने भारी ओढ़नी ओढ़ रखी हो। अपनी छत से वह चारों ओर फैली एक प्रकार की हलकी नीली-धुंध देख सकती थी। सड़कों की बत्तियां जल उठी थीं, पर ओढ़नी की वजह से वे किसी ग्रामीण की झोंपड़ी की छत पर सूखे हुए कद्दू की तरह दिख रही थीं। जी॰टी॰ रोड से घंटाघर होकर सब्जी मंडी की तरफ जा रही बसों का तांता अब कम होता जा रहा था। सिंह सभा रोड की बरसातियों में रहने वाले लोगों की तरह सीतादेवी भी इन वाहनों के शोर की आदी हो चुकी थी। शुरू-शुरू में तो उसे ऐसे शोर में पढ़ना मुहाल हो जाता, पर अब वह इसे बर्दाश्त करना सीख गई थी। वह दिल्ली के विषम और भीषण पर्यावरण के बीच ऐसे ही रच-बस गई थी जैसे कि वह किन्हीं दुष्ट मुंशियों की कारगुजारियां सह लेती थी।

उस उलझाने वाली लालिमा के बीच उसे एकाएक कुछ सफेद-सी रोशनी की झलक दिख पड़ी। नहीं, वह रोशनी नहीं थी। वह तो सफेद मिकी गाय थी।

वह जी.टी. रोड के बड़े चौक पर मुड़ी होगी और वहां से उछलती-कूदती सिंह सभा रोड पर आ गई होगी। उसका बछड़ा भी उसके पीछे-पीछे चला आया होगा। कितना सुंदर दिख रहा था वह बछड़ा। उसके शरीर पर किसी तरह का कोई दाग नहीं था। सीतादेवी ने पहले कभी इतनी सफेद गाय नहीं देखी थी। ...नहीं, कभी नहीं देखी थी। वह बरसाती के नीचे कूड़े के ड्रम के पास आकर खड़ी हो गई थी। ड्रम का कुछ हिस्सा गायब था। उस गायब हिस्से में से जो गऊएं अपने को सिकोड़कर ड्रम के भीतर हो लेती थीं, वे वहां से हटने का नाम नहीं लेती थीं। वह ड्रम प्रायः भरा रहता था गेहूं की भूसी से, बेकार हो गई हरी सब्जियों से, सिंह सभा रोड पर रहने वाले परिवारों के कचरे से।

गाय ड्रम के पास खड़ी होकर उसके चारों ओर सूंघने लगी। सीता यह अनुमान न लगा सकी कि वह सूंघ रही है या जुगाली कर रही है। धुंध के बावजूद वह अपनी छत से गाय को साफ देख सकती थी। वाकई, ऐसी विचित्र सफेदी उसने पहले कभी नहीं देखी थी। ...चांद की रोशनी में तथा सड़क की बत्तियों से आने वाली रोशनी में, जो धुंध और धुएं में से छनकर आ रही थी, वह रंग और भी विलक्षण लग रहा था।

सीता के मुंह से एकाएक निकल पड़ा—हिम साम्राज्ञी !

ओ हिम साम्राज्ञी, मैं तुझे छूना चाहती हूं।

हिम साम्राज्ञी गोल चक्कर के निकट, एक बत्ती के खंभे के नीचे सरकने से पहले, कुछ देर तक कूड़े के ढेर को बार-बार सूंघती रही।

एक दिन दोनों सहेलियां जब 240 नंबर की बस से यात्रा कर रही थीं, तो उन्होंने नांगिया पार्क के पास एक घायल सांड को लुढ़के पाया। उसका खुर फट चुका था और वहां फैले हुए खून पर ढेरों मक्खियां जमा थीं।

वह अपनी सहेली, स्नेह, से कहे बिना रह न सकी, "यह पशु इन ऊंची-ऊंची इमारतों में रहने वाले लोगों की आंखों के सामने लुढ़का पड़ा है। अगर इन्होंने नगर निगम को इत्तला कर दी होती तो वे अभी तक इसे ले गए होते।"

स्नेह का उत्तर भी वैसा ही था, "जब लोग पटरी पर चलने वाले घायलों को देखकर अपना मुंह मोड़ लेते हैं, तब वे एक सांड की चिंता क्यों करेंगे ?"

सीता अपनी रौ में थी, "हम, दरअसल, पशु ही बन गए हैं।"

अपनी सहेली की इस टिप्पणी पर स्नेह चुप ही रही। पर सीता ने मन-ही-मन तय कर लिया था कि स्कूल से लौटकर वह नगर निगम को फोन करेगी।

कुदसिया बाग कश्मीरी गेट के पास ही है। स्कूल से फारिग होने के बाद दोनों सहेलियां कुदसिया बाग के निकट 'पशु निर्दयता निवारण संघ' के कार्यालय गईं। वे सीधे पशु चिकित्सा समाज की ओर बढ़ीं। वहां पर गंजे सर वाला, मोटे फ्रेम का चश्मा लगाए, एक चुस्त-दुरुस्त युवा अधिकारी विराजमान था। उसकी

ठुड्डी पर थोड़ी-थोड़ी दाढ़ी भी थी। वह इनसे बोला, "घायल हो गए पशुओं को यहां उठाकर लाना हमारा काम नहीं। लेकिन आप जैसे शिक्षित लोग अगर हमें इत्तला दें, तो उन्हें उठाने के लिए जरूर गाड़ी भेजेंगे। ...पर यह हमारी जिम्मेदारी नहीं है। यह जिम्मेदारी मुख्य रूप से नगर निगम की है।"

उसके उत्तर से दोनों सहेलियों का उत्साह बढ़ गया। "तब तो आपको चाहिए कि आप फौरन गाड़ी वहां भेजें।"

इस पर सीता बोली, "घायल गाय वहीं पड़ी होगी। क्या मैं नगर निगम को यहीं से फोन कर सकती हूं?"

"जरूर...जरूर। ये हैं वहां के नंबर। मेरा ख्याल है, रुस्तम पाशा ऐसे मामलों को देखता है।"

उन्होंने वहां से उन नंबरों को मिलाने की जी-तोड़ कोशिश की, पर रुस्तम पाशा नाम का अधिकारी अपनी सीट पर था ही नहीं। आम तौर पर वह वहां बहुत कम होता था।

गंजे सर और थोड़ी-थोड़ी दाढ़ी वाले अधिकारी पर दृष्टि डालते हुए सीता ने कहा, "आप यहां किसी दुर्घटना में घायल हुई गऊओं की देखभाल करते हैं। पर जब उनके मालिक उन्हें वापस लेने से इनकार कर दें, तब तो आप उन्हें फिर सड़कों पर खुला छोड़ देते होंगे।"

अपनी दाढ़ी में अपनी उंगलियां फिराते हुए अधिकारी बोला, "नहीं, नहीं, हम ऐसा कुछ नहीं करते। जुर्माना देकर इन गऊओं को कांजी हाउस से छुड़वाया जा सकता है। यह जुर्माना काफी तगड़ा होता है। पर आजकल मालिक लोग इतना तगड़ा जुर्माना चुकता करने की बजाय उन्हें सड़क पर ही पड़े रहने देना पसंद करते हैं। गऊओं के ठीक हो जाने पर जब मालिक नहीं आते तो हम यमुना के किनारे बनी गऊशाला में उन्हें भेज देते हैं।"

उन्होंने सराय कालेखां से गाड़ी के लौटने का लगभग एक घंटे तक इंतजार किया। फिर अधिकारी की बात से आश्वस्त होकर वे लौट पड़ीं। अधिकारी ने उनसे कहा था, "मैंने आपका पता लिख लिया है। जैसे ही गाड़ी आती है, मैं उसे भेज दूंगा।"

कुछ देर तक वे कुदसिया बाग में टहलती रहीं। वहां टहलना उन्हें अच्छा लगता था। वहां कई पुराने खंडहर थे। अगर पाठशाला किसी राजनीतिक नेता के अप्रत्याशित निधन के कारण या ऐसे ही किसी अन्य कारण से बंद हो जाती, तो सीता स्नेह के साथ, या अकेली ही, वहां टहलने चली आती। वह निकलसन कब्रिस्तान या सेंट जेम्स चर्च में भी चली जाती। भीड़-भड़क्के वाली सड़कों के कारण ऐसी जगहों पर पहुंचना आसान नहीं था। क्या उजड्ड लागों की भीड़ ने शाह आलम द्वारा एक सौ पचास साल पहले बनवाए दिल्ली गेट के एक हिस्से को नष्ट नहीं

कर दिया था ? कर्नल जेम्स द्वारा तैयार करवाए गए गिरजाघर की दीवारों पर 'हिम्मते मरदां, मददे खुदा'' लिखा हुआ था। यह वही कर्नल जेम्स था जिसने स्कर्नर हार्स रेजिमेंट की अगुआई की थी। सीता ने यह भी सुन रखा था कि यह अधिकारी अपने आखिरी दिनों में अपराध-बोध से पीड़ित था, क्योंकि उसने युद्ध में विरोधी सैनिकों की लाशों-पे-लाशें बिछा दी थीं। उसने वह गिरजाघर अपने ही पैसों से खुद तैयार करवाया था... और कुदसिया बाग ? सैनिक विद्रोह के दौरान फिरंगियों ने यहां अपनी तोपें गाड़ी थीं और कश्मीरी गेट पर खूब गोले बरसाए थे। अपनी बस में वहां से गुजरते हुए उसे हमेशा यही लगता कि वह कुछ अदृश्य तोपों के सामने खड़ी है और वे तोपें गोले छोड़ने को तैयार हैं।

उस बाग में कुछ देर तक टहलते रहने के बाद, वह और स्नेह बस अड्डे की दिशा में बढ़ीं। सीता पशुनिर्दयता निवारण संघ की गाड़ी का इंतजार करना चाहती थी, लेकिन स्नेह के पास ज्यादा वक्त नहीं था। वह अपने पुरुष मित्र की राह देख रही थी, उन दोनों को अजमल खां मार्केट जाना था।

स्नेह रात को वक्त पर ही लौट आई थी। खाना खा चुकने के बाद वे दोनों छत पर ही टहलने लगीं। टहलते-टहलते सीता एकदम बोल पड़ी, ''चलो, चलकर देखें, गाय को नगर निगम या पशुनिर्दयता निवारण संघ वालों ने उठाया है या नहीं ? गाड़ी तो आई ही होगी।''

स्नेह कतरा गई। पर अपनी मित्र के दिल को ठेस पहुंचाना भी नहीं चाहती थी। उसने तुरंत अपना ओवरकोट पहन लिया। फिर उसने घुटनों तक की जुराबें चढ़ा लीं और सैंडल उतारकर उनकी जगह भारी शूज कस लिए। सीता ने भी अपना कोट और जूते पहन लिए, और अपने कानों और सर को मफलर से ढक लिया। स्नेह का दिमाग तो और भी ऊंचा था। उसने सर पर ऊनी टोपी लगा ली। सिंह सभा रोड पर युवतियां ऐसी ही टोपी लगाती थीं।

गोल चक्कर के पास पहुंचीं तो वे दंग रह गईं। काठी-कबाब वाली दुकान के इर्द-गिर्द अब भी काफी भीड़ थी। पान की दुकान पर भी काफी लोग थे। अलबत्ता, कुछ दुकानें बंद हो गई थीं और उनके सामने खटिया बिछाकर कुछ लोग सोने की तैयारी में थे। दो कुत्ते एक हड्डी पर लड़ रहे थे। काठी-कबाब वाली दुकान के सामने एक सीढ़ी पर, जिसका पलस्तर हट चुका था, सिंह सभा रोड का एक जाना-माना पात्र मंदबुद्धि छोटेलाल बैठा था। उसके बाल जटाजूट हो रहे थे। वह कभी अपने फटे कोट के नीचे कमीज पहने होता, कभी वैसे ही होता। उसके कोट की ऊपर की जेब से एक कलम लगी रहती। कोट का रंग बता पाना बहुत मुश्किल था। उसकी रबड़ की चप्पलें इतनी खस्ताहाल थीं कि उनके नीचे से उसके पैर के तलवे दिख पड़ते। जब उसने सीता और स्नेह को काठी-कवाब की दुकान के

पास से गुजरते देखा तो वह भी उनके पीछे-पीछे चला आया।

बिजली के खंभे के निकट पहुंचते ही सीता एकाएक बोल उठी, "लेकिन गाय तो यहां है ही नहीं।"

दूध के बूथ के पास एक सिपाही अपने भारी भरकम ओवरकोट और उतने ही भारी जूते पहने जैसे कि किसी के इंतजार में था। सीता उससे बात करना चाहती थी, पर स्नेह ने उसका हाथ थाम लिया। "नगर निगम की गाड़ी उसे जरूर ले गई होगी। इतनी कड़ाके की सर्दी में अब हमें यों ही भटकना नहीं चाहिए।"

"बेवकूफ, एम.सी.डी. की गाड़ी नहीं आई।"

एकाएक उन्हें एक चीख सुनाई पड़ी। वे फौरन मुड़ीं। मंदबुद्धि छोटेलाल बिजली के खंभे के नीचे खड़ा अपनी उंगली हिला-हिलाकर कह रहा था, "मुझे मालूम है, गाय कौन ले गया है। उस आदमी को मैं पहचान सकता हूं।"

हमेशा की तरह बातूनी स्नेह से रहा न गया। बोली, "उसका हुलिया कुछ तो बयान करो।"

छोटेलाल ने उत्तर दिया, "अरे भाई, फटी हुई कमीज पहने था। पाजामा सादा था। पांवों पर रबड़ की चप्पलें बिलकुल घिसी हुई थीं। जैसे ही उस लंगड़ी गाय ने उसे देखा, वह बुरी तरह घबरा गई। वह बहुत डरी हुई थी... लगता था जैसे कि उस आदमी को उसने पहचान लिया है और उसके मन के भावों को उसकी आंखों से जान लिया है... वाहे गुरु, सतश्री अकाल, सतश्री अकाल..." फिर वह अपनी एंड़ियों पर घूम गया। उसकी चप्पलें दूर जा गिरीं।

स्नेह को इससे भी संतोष नहीं हुआ। बोली, "अरे भाई, वह गाय तो जख्मी थी। चलने लायक भी नहीं थी।"

छोटेलाल अब लंगड़ाता हुआ उनकी ओर बढ़ा और फिर ऐन उनके सामने खड़ा हो गया। उससे बड़ी तीखी गंध आ रही थी, जो उनके नथुनों में घुसने लगी थी। जरूर उसने सड़ा हुआ कबाब खाया होगा। उसने उस शिकारी की तरह जो अपनी बंदूक से अपने शिकार पर निशाना साधता है, अपनी उंगली से स्नेह को अपना निशाना बनाया और चीखता हुआ बोला, "अरे भाई, यही तो उसका दुर्भाग्य था। लगता है, उस जालिम ने कहीं नजदीक ही छोटा ट्रक खड़ा किया हुआ था। पांच मिनट में ही वह ट्रक गायब हो गया... सड़क की बिजली भी उस समय गायब थी। साले को बहुत मदद मिली। साला कमीना...!"

सीता अब तक चुप थी। वह चीख पड़ी, "वह कौन था ?"

छोटेलाल ने फौरन उत्तर नहीं दिया। पहले की तरह ही अपनी उंगली से बंदूक का काम लेते हुए और उसे युवतियों पर तानते हुए बोला, "लगता है, वही कसाई है। रास्ते की गऊएं उसे अच्छी तरह पहचानती हैं।"

"कसाई ? कसाई कहा ?" वे दोनों ही एकसाथ चीख पड़ीं।

सीता चाहती थी कि वह थोड़ा आगे बढ़कर दूधवाले बूथ के पास आग सेंकते आवेरकोटधारी सिपाही से कुछ बात करे, पर स्नेह ने उसे रोक लिया, "नहीं, नहीं; कोई फायदा नहीं। वह तुम्हें नहीं बता पाएगा कि गाय कौन ले गया है।"

...आहिस्ता, आहिस्ता, लेकिन बिलकुल खामोश, वे वापस मुड़ीं। काठी-कबाब वाली दुकान से भुने गोश्त की कुरकुरी गंध उनके नथुनों को छू रही थी। तंदूर से उठता धुआं और कोहरा, दोनों मिलकर चारों ओर हलकी धुंध फैला रहे थे।

जैसे ही वे रोशनआरा रोड को पार करके सिंह सभा रोड की ओर बढ़ीं, उन्हें अपने बछड़े के साथ वह दूधिया सफेद गाय, हिम साम्राज्ञी, दिख गई। मां और बेटा कूड़े के डिब्बे के पास बैठे जुगाली कर रहे थे... वहां केवल वह हिम साम्राज्ञी ही नहीं थी, थोड़ा हटकर रोशनआरा गार्डन के गेट के पास जुगाली करती, आवारा, कितनी ही गाएं थीं। रोशनी में वे साफ दिख रही थीं। उनमें तीन के आकार काफी बड़े थे—यानी दो सांड थे और एक बैल था। उन सांडों को छोड़कर बाकी सब भस्मी रंग की थीं। सांडों का रंग 'मूंगा' रेशम जैसा था और उनके बदन पर गोबर के छींटे थे। जैसे ही वे उनके और नजदीक हुईं, उन्होंने देखा कि उनमें से कुछ की पुश्त पर मुहर दागी हुई है। नगर निगम वाले शायद उन्हें कांजी हाउस ले गए हों। मालिकों ने जुर्माने की रकम अदा करके उन्हें शायद छुड़वाने की कोई कोशिश की ही न हो, या उन्हें छुड़वाकर फिर खुला छोड़ दिया हो।

सीता का दिल अभी तक धड़के ही जा रहा था। बुरी तरह। स्नेह के हाथ को अपने हाथ में लेकर उसने एक अजीब सवाल कर डाला, "क्या छोटेलाल के शब्द सच हैं?"

स्नेह ने कोई उत्तर नहीं दिया।

चाहे शक्तिनगर चौक को पार करके वह नजफगढ़ जा रही होती, चाहे खैबर पास के रास्ते माल रोड से होती हुई वह कश्मीरी गेट जा रही होती, चाहे कोल्हापुर सड़क होते हुए वह घंटाघर से आ रही होती, उसे अक्सर वह सफेद गाय दिख जाती। उसके साथ उसका चितकबरा बछड़ा भी होता। वे दोनों ही या तो सड़क के एक कोने में खड़े होते या दूसरे पशुओं के साथ बैठे होते। लेकिन हर बार दृश्य में कुछ परिवर्तन होता। या तो मां अपने बछड़े की नाक या उसका मुंह और कान चाट रही होती, या बछड़ा मां के थनों से दूध पीने की कोशिश में होता। पर वास्तव में उसका इस तरह दूध पीना काफी पहले छुड़ा दिया गया था।

स्कूल जाते हुए या बाजार से गुजरते हुए गाय और उसके बछड़े को आंखों-ही-आंखों में तलाश करना उसकी आदत बन चुका था, और इस प्रक्रिया में उसे और भी कई गऊएं दिख जातीं। उनमें वे गऊएं भी थीं जिनके घाव ठीक हो चुके थे। पर अगर आप उनके बहुत करीब हो जाएं तो वे आप को लहूलुहान भी कर

सकती थीं। उनकी दुम और टांगें गोबर से पुती होतीं। कुछ गऊओं के सींगों और खुरों से खून बह रहा होता। कुछ गऊएं उसी जगह पर कई दिनों तक लगातार चक्कर लगाती रहतीं। कुछ सब्जी मंडी की सब्जी वाली दुकानों से हटने का नाम ही न लेतीं। फिर कुछ ऐसी भी थीं जो नृसिंह मार्ग और नांगिया पार्क के भारी आबादी वाले इलाके में ही बने रहना चाहतीं और वहीं आवारागर्दी करतीं।

इस इलाके में कई सफल व्यापारी रहते थे। उनमें कुछ दिल्ली के पुराने व्यवसायी भी थे। उनमें से काफी, सुबह-सुबह स्नान करके और अपनी गर्दन पर सफेद कपड़ा लपेटकर अपनी गऊओं को—जिनका रंग भूरा या काला होता—गेहूं की भूसी खिलाने चले आते। उनके लिए यह एक धार्मिक कृत्य था। वे बहुत सुबह, एक झटके से, अपने-अपने बिस्तर से उठते और गऊ माता के सामने अपनी-अपनी भेंट रख आते। यदि वे न आ पाते, तो उनकी जगह उनकी पत्नियां आतीं, लंबे-लंबे घूंघट काढ़े और गऊओं के सामने साष्टांग लेट जातीं। कुछ 'महंत' लोगों की रोजी-रोटी का साधन ही यही था कि वे ठेलों पर अपने में अजूबा, पांच टांग वाली गऊओं को लिए चले आते और ये महिलाएं उन्हें परांठे खिला-खिलाकर रिझातीं। शनिवार को भी ये लोग अपनी-अपनी गऊओं के गले में कौड़ियों की माला डालकर और उनके सींगों को चांदी से मढ़कर, शंख या ऐसा ही कोई यंत्र बजाते हुए गलियों में चले आते और सेठानियां अपने-अपने घरों से बाहर आकर उनकी पूजा-अर्चना करतीं।

लेकिन सड़कों पर आवारा घूमती गऊओं का क्या हो ? बड़ी-बड़ी कारों में घूमने वाली सेठानियां उन्हें भी तो देखती होंगी ?

तब ?

क्या वे केवल नई दिल्ली के ही चक्कर लगाती हैं ? पर नई दिल्ली की सड़कों पर तो ये गऊएं कहीं देखने को भी नहीं मिलतीं, वहां तो वे फूलों और फलों से सजी-संवरी सामने आती हैं ताकि विदेशी पर्यटकों को फांसा जा सके। नई दिल्ली की सड़कों और पुरानी दिल्ली की सड़कों का कोई मुकाबला नहीं। पुरानी दिल्ली में तो गाड़ियों की भरमार रहती है और गऊओं की भी। पुरानी दिल्ली तो अब उपेक्षित पटरानी हो गई है।

सीतादेवी लगभग हर रोज ही सोचती कि वह देश के बड़े-बड़े पत्रों में लिखेगी और लोगों का ध्यान उन गऊओं की दुर्दशा की ओर खींचेगी जो अपना जीवन भीड़-भड़क्के वाली सड़कों पर ही बिता देती हैं, पर स्नेह हमेशा उसे मना करती और कहती कि वह अपना समय यों ही बरबाद न करे और अपना मन उधर से हटाकर किसी और काम में लगाए। पर सीता पर तो हिम साम्राज्ञी का जादू चल चुका था। और इस पर ताज्जुब यह कि उसे हिम साम्राज्ञी के बारे में सपना भी आया था। सपना

भी सुहावना था—पुरानी दिल्ली की चौपहियां गाड़ियों की चिल्लपों कहीं नहीं थी। शीशे की किरचें और खून के धब्बे, जो वहां के कूचे-महल्लों में अक्सर दिख जाते थे, वे भी नादारद थे। कौए, तिपहिए, टांगे, रेडलाइन और ग्रीनलाइन बसें—उनका भी कहीं नामोनिशान न था। कुदसिया बाग हरी घास और गुलमोहर से लदा हुआ था। घोड़े द्वारा खींची जा रही एक विक्टोरिया बग्घी में कुदसिया बाग का मालिक, नवाब मुहम्मद शाह बैठा था। साथ में बेगम उद्धम बाई भी थी। वे बाग का चक्कर लगा रहे थे। उनके पीछे-पीछे उनके गुलाम दौड़ते चले आ रहे थे। उनके हाथों में हुक्के और पीकदान थे।

बाग में गुलमोहर और गुलाब खिले हुए थे। ये मुहम्मद शाह का अपनी चहेती हिंदू बेगम उद्धम बाई के लिए तोहफे थे। मुहम्मद शाह को नवाब कुदसिया साहिबेजमां भी कहा जाता था। उनके कपड़ों से आ रही इत्र की खुशबू चप्पे-चप्पे में फैली हुई थी। वाह ! क्या नजारा था ! न ही बस अड्डे की फटी आवाज वाली गाड़ियां, न ही बेसब्र कौए। बल्कि हरी घास, गुलाब और गुलमोहर का समुद्र और इत्र की लुभावनी खुशबू। नहीं, वहां कुछ भी नहीं था—न ही 'पशुनिर्दयता निवारण' वालों का कार्यालय, न ही वाहनों द्वारा धराशाई की गई गऊओं का अस्पताल। पर उसे यह देखकर घोर ताज्जुब हुआ कि कुदसिया बाग के हरे बागीचों में हिम साम्राज्ञी तथा उसका चितकबरा बछड़ा मजे-मजे घास चर रहे थे। आह, कितना शांत और निर्विघ्न वातावरण था ! बछड़े की दुम उठी हुई थी और वह उस लंबे-चौड़े मैदान में फुदक रहा था। उसे अब कोई मजबूरी न थी कि वह भीड़-भडक्के वाली सड़कों पर सहमा-सा खड़ा रहे। उनके शरीर पर कहीं धूल-मिट्टी का भी निशान न था। वे तो रुई के गालों के समान दिख रहे थे। कुदसिया बाग और रामकिशोर रोड के किनारों पर वीरान पड़ा 'महल' अब जैसे जी उठा था। फानूस की मोमबत्तियों से आ रही रोशनी में संगमरमर का फर्श चमचमा रहा था... अरे, अरे क्या हुआ ? क्या हुआ ? शीशे का फानूस गिरकर चकनाचूर हो गया। उसकी किरचें सीतादेवी के भीतर घुसी जा रही थीं। यह क्या है जो फव्वारों की तरह फूट पड़ा है ! क्या है यह ? खून ?

सीतादेवी घबराकर उठ बैठी और उसने तकिए के नीचे रखी अपनी घड़ी निकाली—अभी दो ही बजे थे। पीड़ा और निराशा से कुछ देर तक वह बिस्तर में ही करवटें बदलती रही। उसका मन हुआ कि वह स्नेह के बिस्तर में घुस जाए। स्नेह भी तो उदासी में उसके बिस्तर में उसके साथ लेट जाती थी। पर नहीं, उसने ऐसा कुछ नहीं किया।

...सुबह सीता ने अपने सपने के बारे में स्नेह को कुछ नहीं बताया। फिर जब वक्त हो गया तो वे दोनों, बस पकड़ने के लिए, सिंह सभा रोड से घंटाघर की ओर चल पड़ीं। बस में, हमेशा की तरह, महिलाओं के लिए आरक्षित सीटों

पर पुरुष बैठे हुए थे। स्नेह बड़ी होशियार युवती थी। उसने अपना रास्ता बनाते हुए खिड़की के पास की एक सीट हथिया ली और सीता को भी अपने पास खींच लिया। बस जैसे ही शक्तिनगर के चौक वाले विस्तृत यातायात द्वीप से गुजरी, उसे दो आदमियों के निकट खड़ी वह सफेद गाय दिख गई। उसके पास ही बछड़ा खड़ा था।

सीता अपने को रोक न सकी। वह चिल्लाई, "अरे, वह देखो हिम साम्राज्ञी।"

"हिम साम्राज्ञी ?"

"हां, हां, हिम साम्राज्ञी ! उसका बछड़ा भी उसके साथ है।"

"अरे, तुम उस गाय के बारे में कह रही हो ? मैं तो भूल ही गई थी कि तुम उसे 'हिम साम्राज्ञी' कहकर पुकारती हो। ...गर्दन निकाल-निकालकर क्या देख रही हो। यहां बैठो ! ... हे भगवान ! चार-चार लोग एक ही सीट में घुसे जा रहे हैं। हालत वही-की-वही है, चाहे ग्रीन लाइन और रेड लाइन, सब तरह की बसें आ गई हैं।"

सीता ने स्नेह के शब्दों पर कोई ध्यान नहीं दिया। वह अंदर-ही-अंदर भुन रही थी। उसे किसी की कोई खबर न थी। वह अपने से ही कहे जा रही थी, 'लोग कहते हैं, हमारा राष्ट्रीय चरित्र तबाह हो गया है।... इसमें झूठ नहीं है, कोई झूठ नहीं है। कितनी बार मैंने उन्हें बुला भेजा। वे कहते हैं कि मालिक लोग आते हैं और रात को उन्हें उठा ले जाते हैं। मैं यह दावे से कह सकती हूं कि मैं इन गऊओं को पिछले एक महीने से लगभग उसी स्थान पर घूमते देख रही हूं। उनकी गोबर से सनी पूंछें ऐसे दिखती हैं जैसे उन पर गांठें बांधी गई हों। उनकी खाल भी गंदी बोरियों की तरह दिखाई देती है।'

सीतादेवी की पाठशाला के पास ही कश्मीरी गेट का बड़ा डाकघर था। जब पाठशाला में छुट्टी हो गई तो उसने वहां से नगर निगम को फोन मिलाया। पहले उसने पत्र-सूचना वालों का नंबर घुमाया। जब वहां के कर्मचारी को लगा कि वह तो मात्र पशुओं के बारे में बात करना चाहती है, तो उसने उसे सुझाव दिया कि वह निगम के पशु चिकित्सा विभाग से बात करे और उसे उसने वहां का नंबर भी दे दिया। जिस कर्मचारी ने पशु चिकित्सा विभाग में फोन उठाया था, उसकी जबान कुछ सख्त थी। बोला, "आवारा पशुओं के बारे में मैं कुछ नहीं कह सकता। केवल पत्र-सूचना वाले ही आपको उसका विवरण दे सकते हैं...।"

सीता गुस्से के मारे चिल्ला उठी, "पत्र-सूचना वालों ने ही मुझसे कहा था कि आपसे संपर्क करूं। पिछले महीने से कुछ गऊएं...।"

कर्मचारी व्यस्त जान पड़ता था। फिर भी वह बोला, "वहां रुस्तम पाशा होगा। वह आपसे इस विषय में बात कर सकता है।"

सीता आसानी से हार मानने वालों में नहीं थी। उसने पत्र-सूचना कार्यालय में रुस्तम पाशा का नंबर मिलाया।

'ये आवारा पशु वाकई हमारे लिए परेशानी का कारण बने हुए हैं। मुझे लगता है, वे उन्हें पकड़ने वाली हमारी गाड़ियों को पहचान गए हैं। आपको किन्हीं मालिकों से मिलना चाहिए। कोल्हापुर सड़क पर कहीं इन पेशेवर 'गुंडों' के अड्डे हैं। मैं उन्हें 'गुंडा' कहता हूं।''

''पेशेवर गुंडों के अड्डे ?''

''हां, ज्यादातर मालिक तो 'मांस-पुट्ठों वाले' हैं। जरूरत पड़ती है तो वे लाठियों से पीट-पीटकर आदमी का कचूमर निकाल देते हैं। इसमें शक नहीं कि वे कांजी हाउस से अपनी गऊएं छुड़वा लेते हैं, लेकिन जैसे ही वे कुछ दूरी तय कर लेते हैं, वे उन्हें खुला छोड़ देते हैं... मेरी बात ध्यान से सुनिए—दिल्ली में जब इंसानों के लिए ही जगह नहीं बची है, तब वे इन गऊओं को कहां रखेंगे ? आप जानती हैं कि इनमें से कुछ मालिक लोग पटरियों पर ही अपना धंधा चलाते हैं ? सरकारी ज़मीन के बड़े-बड़े खंडों पर ये कब्जा जमाए हुए हैं। ...हम कांजी हाउस में सात दिन तक ही गऊएं रख सकते हैं। बाद में उन्हें गऊशाला में भेज देते हैं।''

इस पर सीतादेवी अपने पूरे जोर से बोली, ''पर मैं आपको कुछ बताना चाहती हूं... मैं पिछले एक महीने से वही गऊएं सड़कों पर देख रही हूं। एक सफेद गाय और उसके बछड़े को कारों और बसों के बीच घूमते एक महीने से अधिक हो गया है... कृपया अपनी गाड़ी भेजिए... मेरा पता है...''

पाशा साहब ने रुक-रुककर उत्तर दिया, ''क्योंकि आपने शिकायत लिखवाई है, इसलिए हम पशु उठाने वाली गाड़ी जरूर भेजेंगे। पर इस समय कोई भी गाड़ी खाली नहीं है। वे सरायरोहिला गई हुई हैं। आप कुछ देर के बाद फोन करें...''

एक हफ्ता बीत गया। एक दिन पाठशाला से छुट्टी होने के बाद वह बस अड्डे से घंटाघर के लिए एक बस में बैठी। कहने को दिल्ली में पंद्रह हजार बसें चलती हैं, जिनमें रेड लाइन और ग्रीन लाइन सभी शामिल हैं, पर भीड़ में कोई फर्क नहीं पड़ा।

यह बस भी पूरी तरह भरी हुई थी, इसलिए उन्हें खड़े ही रह जाना पड़ा। कुछ-कुछ लोग तो चमगादड़ों की तरह बसों से चिपटे रहते हैं...

बहरहाल, यह बस निकलसन कब्रिस्तान को पार कर चुकी थी। वह एक्सचेंज स्टोर्स से भी आगे बढ़ गई थी और शामनाथ मार्ग के निकट थी। तब स्नेह उसके कान में फुसफुसाई, ''यह वही स्थल है जहां 240 नंबर की बस को बम से उड़ाया गया था।''

उन्होंने बाहर देखने की कोशिश की, लेकिन यह संभव न हो सका, क्योंकि उनके चारों ओर लोग-ही-लोग थे। माल रोड को पार करके सेंट स्टीफन कालेज के सामने वाली सड़क पर जाने की बजाय बस बंगलो रोड पर हो ली। जब छात्रों ने बगावत की थी और कुछ बसों को तोड-फोड़ डाला था, तब उन्हें बंगलो रोड की तरफ से ही भेजा जा रहा था। अब भी कुछ ऐसा ही हुआ दिखता था।

भीड़ भी बेपनाह थी। सड़कों पर भी, और बसों के भीतर भी। बंगलो रोड के चौक के पास उन्हें कुछ बड़े-बड़े बैल दिख पड़े। सड़क के बीचोंबीच, सड़क विभाजक पटरी के निकट, वे इस तरह बैठे हुए थे कि कोई भी गाड़ी उनकी दुम कुचलती हुई निकल सकती थी। उनके खुरों को भी कुचल सकती थी।...

सीतादेवी ने अपना मुंह दूसरी ओर मोड़ लिया। ...एकाएक रोशनआरा पुलिस चौकी के पास बस रुक गई। वहां जबरदस्त जमघट लगा हुआ था। वहां एकाएक शोर भी मचने लगा। कुछ सवारियां हड़बड़ी में नीचे उतर गईं। "क्या हुआ ? क्या हुआ ?" हर किसी की जबान पर यही शब्द थे।

"एक्सीडेंड ! एक्सीडेंट !"

एक और आवाज आई, "खुदा का शुक्र है। आदमी नहीं मरा, एक गाय मरी है।"

सीतादेवी ने स्नेह का हाथ कसकर पकड़ लिया। वे दोनों भी जल्दी से बस से नीचे उतर गईं। ओह, वही, वही सफेद गाय। उसकी खोपड़ी कुचली जा चुकी थी। उसका चितकबरा बछड़ा उसके पास ही खड़ा था, अपनी मां के पास। मां की खोपड़ी से बहती खून की धारा बछड़े की टांगों के पास एक तलैया का रूप लेती जा रही थी।

सीतादेवी से यह बरदाश्त न हुआ। भीड़ को एक तरफ ठेलती हुई वह बस की ओर बढ़ गई।

स्नेह ने अब सीता के गऊओं से संबंधित काम में साथ देना छोड़ दिया था। पर सीता उसका साथ छोड़ने को तैयार न थी। उसके जूतों के तल्ले घिस चुके थे। उसकी जेब का पैसा भी धीरे-धीरे खत्म हो रहा था, पर उसकी कोशिश बदस्तूर जारी थी।

●●●

शिवम् ऑफसैट प्रेस, ए-12/1, नरायणा इंडिस्ट्रयल एरिया, फेज-I, नई दिल्ली 110 028 द्वारा मुद्रित